मनोज कुलकर्णी
चित्रकार, कहानीकार

चित्रकृतियां प्रतिष्ठित कला प्रदर्शनियों में प्रदर्शित, पुरस्कृत
विभिन्न शहरों में पच्चीस से अधिक समूह प्रदर्शनियां
सामयिक मुद्दों पर जन अभियानों के साथ अनेक घुमंतू नुमाइशें
एक कथा-संग्रह और विविध मुद्दों पर कुछ पुस्तिकाएं और अनुवाद प्रकाशित
बीजीवीएस के लिए 'ज्ञान विज्ञान वार्त्ता' और बाल पुस्तक माला का संपादन।

जनवादी सांस्कृतिक और सामाजिक आंदोलनों से गहरा जुड़ाव
यात्रा और फोटोग्राफी में गहरी रूचि

सम्पर्क : एफ-1, साईधन अपार्टमेंट,
विंग-बी, ई -8 / 60, त्रिलंगा,
भोपाल (म.प्र.) -462039

+91-0755-2726262
+91-9424407846
manoj4165@gmail.com

सहयोग राशि: 150 रूपये

भारत ज्ञान विज्ञान समिति
E-mail : bgvsdelhi@gmail.com Website : www.bgvs.org

एम.पी. परमेश्वरन और भारत का जन विज्ञान आंदोलन मनोज कुलकर्णी BGVS

एम.पी. परमेश्वरन
और
भारत का जन विज्ञान आंदोलन

मनोज कुलकर्णी

एम.पी. परमेश्वरन
और
भारत का जन विज्ञान आंदोलन

मनोज कुलकर्णी

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

एम.पी. परमेश्वरन और भारत का जन विज्ञान आंदोलन

मनोज कुलकर्णी

प्रकाशक :

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

फ्लैट नं. 59/5, तीसरी मंज़िल, कालकाजी,

नई दिल्ली–110019

प्रथम संस्करण : 2015

आवरण छायाचित्र– मनोज कुलकर्णी

आवरण – ममता

मुद्रण : क्रिसेंट प्रिन्ट साल्युशनस नई दिल्ली–110018

M.P. Parmeshwaran aur Bharat ka Jan Vigyan Aandolan

Manoj Kulkarni

Published by : Bharat Gyan Vigyan Samiti
Flat No. 59/5, 3rd Floor,
Kalkaji, New Delhi- 110019
Phon No : 011-26463324
E-Mail : bgvsdelhi@gmail.com, bgvs_delhi@yahoo.co.in
Website : www.bgvs.org

प्राक्कथन

वर्ष 1989 में औपचारिक तौर पर अस्तित्व में आया देशव्यापी संगठन 'भारत ज्ञान विज्ञान समिति', अपनी स्थापना के पच्चीस बरस पूरे कर चुका है। आमतौर पर 'बीजीवीएस' नाम से लोकप्रिय यह संगठन, देश में 'जन विज्ञान आंदोलन' के एक हिस्से के रूप में साक्षरता और शिक्षा के स्वास्थ्य, महिला–शिक्षा, आत्म–निर्भरता और मानवाधिकारों आदि क्षेत्र में सक्रिय है। एक चौथाई सदी की अपनी यात्रा का लेखा–जोखा जब हम देखते हैं, तो तमाम पहल–कदमियों, अभियानों, कार्यक्रमों, सफलताओं और संभावनाओं के बीच अनेक लोगों की दिन–रात की मेहनत, समर्पण, ऊर्जा और एकता दिखाई देती है। ऐसे सैकड़ों चेहरों और व्यक्तित्वों के बीच एक शख़्सियत को विशेषतः रेखांकित किया जाना चाहिए। ये हैं – डॉ. एम. पी. परमेश्वरन! जिन्हें हम सब प्रेम और सम्मान से एम.पी. पुकारते हैं।

असमाप्त जिज्ञासा, अद्‌भुत ऊर्जा, ढेर सारे सपनों और नयी–नयी योजनाओं से भरे–पुरे इसी व्यक्तित्व ने भारत में 'जन विज्ञान आंदोलन' को एक रूप दिया है। एक दिशा दी है। देश के विभिन्न हिस्सों में अपने–अपने स्तर पर काम कर रहे 'जन विज्ञान समूहों' को एक छतरी तले एकजुट करने से लगाकर देश में एक विशालकाय साक्षरता अभियान खड़ा कर देने में एम.पी. की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। देश में 'जन विज्ञान आंदोलन' के आदि संगठन 'केरला शास्त्र साहित्य परिषद' (केएसएसपी) के तो वे महत्वपूर्ण धुरी रहे ही हैं।

एर्नाकुलम जिले को और बाद में केरल राज्य को पूर्ण साक्षर बनाने में उनके योगदान को कैसे भुलाया जा सकता है ? जनवाद में भरोसा रखने वाले एम.पी. सफलताओं का श्रेय लेने कभी आगे नहीं आये पर असफलताओं की जिम्मेदारी लेने हमेशा तत्पर रहे हैं। आत्मप्रचार तो उन्हें नापसंद है ही। संगठन महसूस करता है कि अपने शुरूआती साथी के कामों और संघर्ष को सामने लाये। लिहाजा यह पुस्तक है।

उम्मीद है हमेशा की तरह आप अपने विचारों, सुझावों से हमें अवगत करायेंगे।

आशा मिश्र
सचिव
भारत ज्ञान विज्ञान समिति

एम.पी. परमेश्वरन : एक परिचय

केरल में एक उजाड़ सा गांव है 'करीञ्ञानाडु', अर्थात–एक जला हुआ गांव। वहीं 18 जनवरी 1935 को एम.पी. परमेश्वरन का जन्म हुआ था। उनके पिता आयुर्वेदिक वैद्य थे, जो त्रिशूर में अपने गुरु ई.टी.एम. दिवाकरन की खुदरा दुकान की देखभाल करते थे। उनकी आमदनी इतनी नहीं थी कि अपनी पत्नी और बेटे को शहर में साथ रख पाते।

1938 में जब दिवाकरनजी ने एक मकान बना लेने की अनुमति सहित मामूली भाड़े पर 45–50 शतांश जमीन एम.पी. के पिता और चाचा को दी, तब कहीं अगस्त 1938 में एम.पी. की मां अपने दोनों बेटों के साथ उस छोटे से घर में आ सकी। कालांतर में वही घर इस परिवार का पुश्तैनी पता बना।

केरल के नम्बूदिरी ब्राह्मण बेहद रूढ़ीवादी थे। वेदों को रट कर उन्हें मौखिक दोहराना ही उनकी साधारण शिक्षा हुआ करती थी। बिना गलती के जो ऐसा कर पाता, उसे सम्मान से देखा जाता था। वह 'ओथन' कहलाता। एम.पी. के पिता एक सम्मानित 'ओथन' थे। वेदों के अलावा 'संस्कृत व्याकरण' और 'तर्क' नम्बूदिरी–शिक्षण के अन्य विषय थे। छात्र बाद में 'तंत्र', 'पूजा' या 'आयुर्वेद' सरीखे व्यावसायिक–पाठ्यक्रमों में चले जाते थे। एम.पी. के पिता ने 'संस्कृत' और 'आयुर्वेद' पढ़ा था।

नम्बूदिरी समाज में उन दिनों नवजागरण की लहर थी। 'योगक्षेमम्' नाम से ख़्यात उस सुधारवादी नम्बूदिरी आंदोलन के पुरोधा कुरूर उन्नी नम्बूदिरीपाद थे। 1920–30 के दशक में नम्बूदिरियों को आधुनिक बनाने के लक्ष्य के साथ वह आंदोलन शुरू हुआ था। कई दशकों बाद उसी नाम से, लेकिन नितांत विपरीत लक्ष्यों के साथ दूसरी लहर चली थी। पुनरूत्थानवादी लहर में पुनः रूढ़ीवाद की स्थापना पर ज़ोर दिया जा रहा था।

नम्बूदिरी समाज में उस वक्त एक विचित्र परम्परा थी। परिवार के बड़े बेटे का ही विवाह नम्बूदिरी समुदाय की लड़की से किया जा सकता था। दूसरे, तीसरे आदि पुत्रों के विवाह अन्य समुदायों मसलन मातृसत्तात्मक क्षत्रिय अथवा नायर आदि की लड़कियों से करना पड़ते थे। इस कारण नम्बूदिरी समाज की लड़कियों के लिए कम ही वर बच पाते थे। वे अविवाहित ही न रह जायें, इसके लिए बड़े पुत्र को अक्सर एक से अधिक विवाह करने पड़ते थे। इस रिवाज़ के कारण कई लड़कियों की शादी उनके पिता या उनसे भी अधिक आयु वाले व्यक्तियों से कर दी जाती थी।

एक अन्य प्रथा थी, अदला–बदली विवाह की। जिस वर के साथ कोई नम्बूदिरी अपनी पुत्री का विवाह करता था, उसकी छोटी बहन से उसे खुद विवाह करना होता था। ऐसी विचित्र प्रथाओं के कारण अनेक नम्बूदिरी महिलायें युवावस्था में ही विधवा हो जाती थीं। वे सारी उम्र कठोर विधवा जीवन व्यतीत करने को विवश होती थीं। विधवाओं के साथ समाज का बर्ताव बहुत बुरा होता था। उनका दुःख अकल्पनीय था।

आजादी के आंदोलन में शामिल हो चुके कुरूर उन्नी नम्बूदिरीपाद और कुछ अन्य युवकों ने बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों में सुधारवादी पहलकदमियां की। मसलन गुच्छ कटवां देना, महिलाओं का अपने बढ़े हुए केशों को कटवा देना और ब्लाउज पहनना, स्कूल जाना, अंग्रेजी पढ़ना, छोटे बेटों द्वारा समान जाति की लड़कियों से ब्याह करना और विधवा–विवाह आदि।

प्राथमिक शिक्षा

इसी संघर्ष में परिवर्तनवादियों ने 'नम्बूदिरी विद्यालयम्' स्थापित किया था। विद्यालय का इतिहास क्रांतिकारी था। कट्टरपंथियों की इन बातों को स्वीकार लिया गया था कि विद्यालय में केवल नम्बूदिरी बालक–बालिकाओं को ही प्रवेश दिया जाये और वेद–पाठ की पारम्परिक शिक्षा पूरी कर लेने

पर ही बालक को विद्यालय में आने दिया जाये। इस विद्यालय में बालिकाएं भी थीं। उस समय के हिसाब से यह एक बड़ा कदम था। 1940 में साढ़े पांच साल के एम.पी. को इसी स्कूल में दाखिल करवाया गया। अर्द्धवार्षिक परीक्षा में अच्छे परिणाम आने पर वहां छात्र–छात्रा को अगली कक्षा में बिठा देने का चलन था, लिहाजा एम.पी. अगले ही वर्ष कक्षा तीन में थे।

उन दिनों नम्बूदिरी ब्राह्मण बालकों को 'उपनयन', 'ब्रह्मचर्य' और 'समावर्तन' आदि धार्मिक संस्कारों से गुजरना होता था। उन्हें अनेक रिवाज़ों का पालन करना पड़ता था, जिसमें सुबह–शाम 'अग्निदेव' की पूजा शामिल थी। किशोरावस्था में प्रवेश कर रहे बालकों का विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण बढ़ रहा होता था, पर उनकी माताएं तक उन्हें छू नहीं सकती थीं। वे अपनी बहनों के साथ भी खेल नहीं सकते थे। भोजन करते समय उन्हें संस्कृत में ही बोलना होता था। वे लुंगी नहीं पहन सकते थे। उन्हें लंगोट धारण करनी होती थी। काला चना, पापड़ और अनेक ऐसे खाद्य उनके लिए निषिद्ध थे जिन्हें काम भावनाएं भड़काने वाला समझा जाता था।

दस–बारह वर्ष के बच्चों के लिए यह सब दुःसाध्य होता था। एकांत में वे बच्चे ऐसी तमाम पाबंदियों को तोड़ा करते। सम्भवतः इसी कारण मलयालम में एक कहावत प्रसिद्ध है कि एक ब्रह्मचारी, सौ बंदरों से भी अधिक उपद्रवी होता है। पन्द्रह–सोलह की उम्र तक एक नम्बूदिरी बच्चा 'समावर्तन' की प्रथा को पूर्ण करता था। तब वह विवाह योग्य मान लिया जाता था। सुधारवादी आंदोलन इन तमाम रूढ़ियों के विरुद्ध था।

एम.पी. के पिता कुछ–कुछ रूढ़ीभंजक थे। अपने बेटे पर उन्होंने कड़ा अनुशासन नहीं थोपा था। यद्यपि एम.पी. को तमाम रिवाज़ों का पालन करना पड़ा। तब भी वेद–रटने की परम्परा से उन्हें छूट मिल गयी थी। वे पैंट–शर्ट पहन सकते थे। एकांत में वे भी लादी गयी पाबंदियों को तोड़ा करते थे। स्कूल से लौटने पर तालाब में नहाने के बाद ही उन्हें खाने को

कुछ मिल सकता था। तब घरों में चाय या कॉफी का चलन नहीं था। लड़कियों को विद्यालय में दाखिल तो किया जाता था, लेकिन 'रजस्वला' होते ही अधिकतर लड़कियां स्कूल छोड़ देती थी।

भारत के इतिहास में 1942 का साल बड़ा घटनापूर्ण था। भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हो चुका था। खादी, आज़ादी की लड़ाई का महत्त्वपूर्ण हथियार बन चुकी थी। 'नम्बूदिरी विद्यालयम्' में खादी के कार्यकर्ता बच्चों को सूत कातना सिखाते थे। एम.पी. ने भी चरखा चलाना सीखना चाहा। पर महज सात बरस का होने के कारण उन्हें चरखा चलाना नहीं सिखाया गया। उन्होंने हार न मानी। शहर में खादी की एक दुकान थी। वहां खादी के कपड़ों और अन्य वस्तुओं के अलावा सूत और चरखे बेचे जाते थे। वहां चरखे रखे भी गये थे, कोई जाकर उनका उपयोग कर सकता था। एक भद्र महिला उस दुकान की देखरेख करती थी। खादी बनाना सिखाने का निवेदन लेकर एम.पी. उसके पास गये। एक छोटे से बच्चे के आग्रह की वे अनदेखी न कर सकीं और बच्चे को चरखा चलाना, सूत कातना सिखाने लगीं।

एम.पी. के एक मामा कांग्रेस से जुड़े थे। वे नियमपूर्वक सूत कातते थे। उस दुकान पर नन्हें एम.पी. को चरखा चलाते देख वे बेहद खुश हुए। अपने भांजे को उन्होंने उपहार में एक चरखा दिया। इस तरह एम.पी. के लिए घर पर ही चरखा चलाना सम्भव हुआ। एम.पी. के काते हुए सूत में अपना सूत मिलाकर मामा ने बुनाई के लिए दे दिया। उससे मिले कपड़े से नन्हें एम.पी. ने एक शर्ट सिलवाया। चरखा चलाने या खादी पहनने का असली महत्त्व नन्हें एम.पी. की समझ से तब दूर था। वे तो यह सोच कर ही रोमांचित थे कि ऐसा करके वे आज़ादी की लड़ाई में हिस्सेदारी कर रहे थे। स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता के अर्थ तो उन्हें दो दशक बाद समझ आये।

त्रिशूर एक कस्बा था। वहां के डीजल वाले बिजलीघर से एम.पी. का मकान महज तीन सौ मीटर दूर था। मगर, गरीबी के चलते उनका परिवार

बिजली नहीं खरीद सकता था। उन्हें लालटेन में पढ़ाई करनी होती थी। तब केरल प्रदेश नहीं बना था। 1946 में एम.पी. ने कक्षा सात की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें सी.एम. एस. बालक हाईस्कूल भेजा गया।

एम.पी. के पास कपड़े का छाता नहीं था। वे ताड़ के पत्तों से बना छाता लेकर स्कूल जाया करते। इस कारण दूसरे बच्चे उन पर पत्थर फेंकते। एंग्लो–इंडियन ए.ई. चार्ल्स सख़्त हेडमॉस्टर थे। वे भी उस छाते को कक्षा में लाने की अनुमति नहीं देते थे। एम.पी. को अपना छाता बरामदे में रखना पड़ता था। दिलचस्प शख़्सियत वाले जोशुआ महोदय गणित पढ़ाते थे। एम.पी. की परेशानी भांपते हुए वे भी ताड़–पत्तों वाला छाता लेकर स्कूल आने लगे। उनका छाता, एम.पी. के छाते से कहीं बड़ा था। अपने छाते को वे कक्षा में भी ले जाया करते। उनके विरुद्ध हेडमॉस्टर कुछ नहीं कर पाये। इस तरह एम.पी. के ताड़पत्री छाते को भी कक्षा के भीतर जगह मिल गयी। धीरे–धीरे दूसरे बच्चों ने इस बात पर उन्हें परेशान करना तो बंद कर दिया लेकिन अन्य मसलों पर जरूर वे एम.पी. को छेड़ते रहते। उनसे मुकाबले के लिए छोटे और कमजोर एम.पी. अपने दांतों और नाखूनों का उपयोग करते।

उन दिनों तक चुनिंदा नम्बूदिरी बच्चे ही इतनी हाईस्कूल तक शिक्षा पा सकते थे, क्योंकि अमूमन पालक इसे नापसन्द करते थे। स्कूल जाने के इच्छुक बच्चों को बगावती हो जाना पड़ता था। कुछ स्थानों पर भोजन तो मुफ़्त मिल जाता था लेकिन फीस का क्या करते? नम्बूदिरी सुधार के पहले आंदोलन के नेता कोचिन महाराजा के दिमाग में यह बात बिठा देने में सफल रहे थे कि ऐसे बच्चों को आर्थिक मदद की जरूरत है। आधुनिक शिक्षा के मामले में पिछड़ा करार देकर नम्बूदिरियों का शिक्षण–शुल्क माफ कर दिया गया था। कक्षा नौ तक फीस–माफी का लाभ एम.पी. को भी मिला। पर दसवीं से उन्हें फीस चुकाना पड़ी। मार्च 1949 में उन्होंने ठीक–ठाक अंकों से एसएसएलसी परीक्षा पास कर ली।

उच्च शिक्षा

इंटरमीडिएट तब विश्वविद्यालयीन शिक्षा के तहत था। विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए उनकी उम्र कम पड़ रही थी। इस मामले में मद्रास विश्वविद्यालय बड़ा सख़्त था। 15 जनवरी 1949 तक जो बच्चे चौदह वर्ष के नहीं हुए थे, विश्वविद्यालय में दाखिला नहीं ले सकते थे। ठीक तीन दिनों बाद 18 जनवरी 1949 को एम.पी. चौदह वर्ष के हो जाने वाले थे। पर नियम तो नियम था। कोई छूट नहीं मिल सकी। दो ही विकल्प थे–एक वर्ष तक खाली बैठे रहें या कोई डिप्लोमा कर लें, जिसके लिए उम्र आड़े न आती हो। पहला विकल्प पिता और एम.पी. दोनों को पसंद ना था। तय हुआ कि त्रिशूर महाराजा के तकनीकी संस्थान में दाखिला लिया जाये।

संस्थान के प्राचार्य भले थे। दाखिला देने में उन्हें कोई आपत्ति न थी, लेकिन उनकी सलाह थी कि एम.पी. को वहां दाखिल न करवा के डिग्री कोर्स में ही भेजा जाये। कॉलेज में अनौपचारिक तौर पर एक बरस पढ़ने से फायदा ही होगा। इसे वर्ष की बर्बादी न मानें। पिता ने सलाह मान ली। एम.पी. को सेंट थॉमस कॉलेज में दाखिला दिलवा दिया। फीस चुका कर, वे कक्षा में बैठ सकते थे। परीक्षा दे सकते थे, लेकिन उन्हें अगले दर्जे में प्रवेश नहीं दिया जा सकता था। दूसरे वर्ष भी उन्हें पहले दर्जे का ही विद्यार्थी माना जाता। अंग्रेजी, उनकी कमजोरी थी। जिसमें वे जैसे–तैसे 40 फीसद अंक पा सके। गणित में उन्हें 94 फीसद और भौतिकी, रसायन आदि में 80 फीसद से अधिक अंक मिले।

एम.पी. छोटे–नाटे थे। सहपाठी उनका मज़ाक बनाया करते–अरे छोटू... अपनी अम्मां को साथ लाये हो कि नहीं? तुम्हारी दूध की बोतल कहां है? हालांकि ऐसे व्यवहार की उनको आदत पड़ चुकी थी। सब कुछ भूल कर वे पढ़ने में लगे रहे। अंतिम परीक्षा उन्होंने अच्छे अंको से उत्तीर्ण की और उन्हें इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिला मिल गया।

वे आगे की पढ़ाई के बारे में सोचते तो थे, पर इंजीनियरिंग की पढ़ाई का ख़्याल तो सपने में भी नहीं आता था। उसके लिए उन्हें त्रिवेन्द्रम जाना पड़ता। छात्रावास में रहना होता, जिसका खर्चा खूब आता। उनके पिता की आमदनी महज एक सौ रुपया प्रति माह थी। जिन पर नौ लोग आश्रित थे। उनके लिए इतना खर्च उठा पाना मुमकिन न था। एम.पी. ने मामा का दरवाजा खटखटाया। जिनकी आर्थिक हैसियत कमोबेश बेहतर थी। वहां से उन्हें उत्साहवर्धक जवाब नहीं मिला। दूसरा उपाय था, एम.एस.सी. के समकक्ष किसी ऑनर्स पाठ्यक्रम में जाना। रसायन–शास्त्र में उनकी गहरी रूचि थी। इंजीनियरिंग के लिए अर्जी तो उन्होंने दे दी थी, पर दाखिला रसायन ऑनर्स में ले लिया।

दो महीने बाद इंजीनियरिंग कॉलेज में उनके चयन की सूचना मिलने पर उनके पिता असमंजस में पड़ गये। नामालूम क्या हिसाब लगा। एक जमींदार मित्र के पास खुद का मकान गिरवी रख, उन्होंने दो हजार रुपये का कर्ज़ ले लिया। एम.पी. के रहने–खाने की निःशुल्क व्यवस्था जमाने के लिए एक शुभचिंतक ने त्रिवेन्द्रम में गणित–विभाग के प्रमुख के नाम एक सिफारिशी चिट्ठी दी। पिता द्वारा लिये गये निर्णय के खतरों के मद्देनज़र एम.पी. को अपनी जिम्मेदारियों का गहरा अहसास था। वे पढ़ाई में बहुत ध्यान देते। निहायत सादा जीवन जीते। फिर भी एम.पी. की इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करवाने के लिए उनके पिता को 20 शतांश जमीन बेचना पड़ी। कुल तीन हजार दो सौ रुपयों में उनका चार वर्षीय पाठ्यक्रम पूरा हुआ।

इंजीनियरिंग कॉलेज के दिन बड़े 'नीरस' थे। वहां एक भी लड़की नहीं पढ़ती थी। यूं प्राथमिक शिक्षा के बाद ही वे कभी भी लड़कियों के साथ नहीं पढ़े। इस तरह किसी के प्रेम में पड़ने का उन्हें वातावरण ही नहीं मिला। किशोरवय में हुए इकतरफा आकर्षण की एकाध मधुर स्मृति उनके मन में अवश्य बनी रही। कॉलेज के पहले वर्ष के बाद की छुट्टियों में उन्हें एक स्वशिक्षित इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियर एम.एन. नम्बूदिरीपाद के साथ कुछ समय बिताने का मौका मिला। जिन्होंने इलेक्ट्रीकल इंजीनियरिंग के प्रति एम.पी. में लगाव

विकसित किया। आगे चलकर एम.पी. ने उसी शाखा का चयन किया और पहले स्थान के साथ शिक्षा पूरी की।

1956 में वे इंजीनियर बन गये। एक महीने के भीतर ही उन्हें राज्य विद्युत विभाग में जूनियर इंजीनियर पद पर अस्थायी नियुक्ति मिल गयी। जो जल्द ही स्थायी भी हो गयी। उस काम से लेकिन, वे संतुष्ट नहीं थे। उनका इरादा केरल से बाहर जाने का था। सामने दो अवसर थे। एक कोलकाता में, दूसरा मुंबई में। उन्होंने मुंबई के 'टाटा हायड्रो' में जाना तय पाया। दस महीने की उस नौकरी में उन्होंने अपने चार वर्षीय पाठ्यक्रम से कहीं अधिक ज्ञान अर्जित किया।

प्रयोग धर्मिता

एम.पी. स्वभाव से ही जिज्ञासु रहे। प्रयोग करके देखना उनकी आदत थी। हाईस्कूल के दिनों में आयुर्वेदिक औषधियां बनाने की एक पुस्तिका उनके हाथ लगी। बिना उचित अनुपात जाने ही उस उत्साहित किशोर ने बुद्धि बढ़ाने की एक औषधि तैयार कर डाली। उसे 'युक्तिरसायन' नाम दिया। खुद ही खाकर उसका असर आजमाने लगा। अगले ही दिन उसका पेट खराब हो गया। जाहिर है, बुद्धि भी बढ़ी कि ऐसे प्रयोगों से बाज आना चाहिये।

उन्होंने कुछ इधर–उधर के प्रयोग किये, जो अपेक्षित परिणाम हासिल नहीं कर पाये। विविध किस्म के चूल्हे बनाने के प्रयोग वे जरूर कोई साल भर तक करते रहे। जिनमें ईंधन के तौर पर भूसे का प्रयोग होता था। पतरे का काम करने वाले एक परिचित के साथ उन्होंने कुछ कोशिशें कीं। वर्षों बाद विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के साथ धुआं–रहित चूल्हा बनाने के काम में वह पुराना अनुभव काम आया।

वनस्पति से स्याही बनाने और रसोई में मां का हाथ बंटाते हुए विविध व्यंजन बनाने में भी एम.पी. की रूचि रही। उनके हास्यास्पद प्रयोगों पर उनके पिता तंज करते थे कि बहुत सारी शक्कर और घी के साथ तो आदमी ऊन भी खा लेगा। एम.पी., तब भी हतोत्साहित नहीं हुए। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि

उपलब्ध सस्ते पदार्थों से स्वादिष्ट व्यंजन बनाना ही श्रेष्ठ रसोईया होने का प्रमाण है। उन्होंने सूप, दलिया, मिठाई, अचार, वाइन और सालन बनाने के बहुत सारे प्रयोग किये। अनेक प्रयोग व्यावसायिक तौर पर कारगर साबित हुए। इस उम्र में भी व्यंजन बनाने की उनकी प्रयोग–धर्मिता बरकरार है। 'रसोईघर–एक विश्वविद्यालय' उनकी दिलचस्प अवधारणा है। वे मानते हैं कि छोटी–सी रसोई में जीवन के अनेक सबक सीखे जा सकते हैं।

भाभा अणु शक्ति केंद्र में

वर्ष 1957 के जून–जुलाई में ट्रॉम्बे के अणु शक्ति प्रतिष्ठान द्वारा जारी एक विज्ञापन में अणु शक्ति प्रतिष्ठान प्रशिक्षण विद्यालय खोलने की घोषणा थी। उसके लिए आवेदन मंगवाये गये थे। परमाणु ऊर्जा का क्षेत्र तब नया और आकर्षक था। केरल के इस युवा इंजीनियर ने आवेदन कर दिया। वह चुन भी लिया गया। अगस्त 1957 में वहां के प्रशिक्षणार्थियों की पहली टोली के साथ उसने पढ़ाई शुरू की। डॉ. राजा रामन्ना उन्हें परमाणु–भौतिकी पढ़ाते थे। उन्हें खुद डॉ. होमी जहांगीर भाभा उस संस्थान में लाये थे। होनहार भौतिकविद् होने के साथ ही वे एक कुशल पियानो–वादक भी थे। डॉ. भाभा भी एक पारखी कलाकार थे। हमेशा जल्दी में रहने वाले डॉ. रामन्ना के बारे में विद्यार्थी मज़ाक किया करते थे 'उन्हें परेशान मत करो, वे नोबेल पुरस्कार पाने के काम में व्यस्त हैं।'

डॉ. रामन्ना ने इन युवकों को समझाया कि कोई भी व्यक्ति महज दस से पांच बजे तक का वैज्ञानिक नहीं हो सकता। उसे प्रत्येक क्षण वैज्ञानिक होना होता है। एम.पी. ने यह बात गांठ बांध ली। बाद के अपने अनुभवों से उन्होंने यह निष्कर्ष भी निकाला कि क्रांति भी एक सतत् प्रक्रिया है, कोई भी अंशकालीन क्रांतिकारी नहीं हो सकता। डॉ. रामन्ना की इस सीख को भी उन्होंने आत्मसात किया कि नयी खोज करने के लिए नये उपकरण बनाने होंगे। जीवन भर वे उस सीख का पालन करते रहे हैं।

निहायत सादे भोजन तथा साधारण कमरों के बावजूद लैण्ड एंड, बांद्रा में स्थित वह छात्रावास एक खूबसूरत जगह थी। सुरम्य चट्टानी समुद्र तट के किनारे खड़े हो डूबते सूरज को निहारते हुए सपनों भरी शामें गुजारना शानदार होता था। 4 अक्टूबर 1957 की शाम छात्रावास में साथ रहने वाले मित्र एम.आर. कुरूप के साथ एम.पी. समुद्र किनारे सुस्ता रहे थे कि सोवियत संघ द्वारा 'स्पूतनिक' नाम का एक मानव निर्मित उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़ने की रोमांचक खबर मिली। 82 किलो का वह उपग्रह अमेरिका द्वारा आने वाले वर्ष में कभी छोड़े जाने वाले उपग्रह से दो गुने वजन का था। अंतरिक्ष के प्रयोगों में सोवियत संघ ने अमेरिका को पछाड़ दिया था। दशकों तक उसने वह बढ़त कायम रखी। परमाणु–ऊर्जा के शांतिपूर्ण इस्तेमाल और परमाणु बिजली उत्पादन में भी सोवियत संघ, पश्चिमी देशों से आगे निकल गया था। उनका परमाणु बिजलीघर 1955 से ही मॉस्को के नज़दीक काम कर रहा था। इंग्लैण्ड में ऐसे बिजलीघर 1956 और अमेरिका में 1962 में अस्तित्व में आये। इनकी तर्ज़ पर भारत में बना तारापुर परमाणु बिजलीघर 1969 में शुरू हुआ।

उक्त ख़बर से उत्साहित दोनों मित्रों ने निश्चय किया कि वे रशियन भाषा सीखेंगे। अगले ही दिन वे फोर्ट स्थित इण्डो–सोवियत सांस्कृतिक समिति के कार्यालय जा पहुंचे, जहां रशियन भाषा सिखायी जाती थी। नवम्बर से ही अगला सत्र शुरू होने वाला था। दोनों ने उसमें शामिल होने का आवेदन दे दिया। कुल चालीस विद्यार्थी थे। कक्षाएं माटुंगा में विश्वविद्यालय के रसायन–प्रौद्योगिकी विभाग में लगती थी। चेकोस्लोवाकिया से आयी रूज़ेना कामत वहां पढ़ाती थीं। वे आईआईटी के प्राध्यापक एन.आर.कामत की पत्नी थीं। शीघ्र ही विद्यार्थी कक्षा छोड़ जाने लगे। साल खत्म होते–होते तक महज़ तीन विद्यार्थी ही रह गये थे। एम.पी., कुरूप और 'बार्क' के रसायन विभाग में कार्यरत श्री खोपकर।

एक और वर्ष तक उन्होंने भाषा अध्ययन किया। रशियन पढ़ना और समझना तो उन्हें आ गया लेकिन लिखने में वे पारंगत नहीं हो पाये। 1960 की

शुरूआत में एम.पी. को परमाणु रिएक्टर सिद्धांत पर डॉ. गलानीन की लिखी एक नयी पुस्तक मिली। इस विषय पर अंग्रेजी में उपलब्ध अनेक पुस्तकों से रशियन भाषा की वह पुस्तक बेहतर थी। अभ्यास के उद्देश्य से छः महीने लगा कर एम.पी. ने चार सौ पन्नों की उस किताब का अंग्रेजी में अनुवाद कर डाला। उस वक्त उसे छापने के लिए कोई प्रकाशक राजी नहीं था। वर्षों बाद कहीं जाकर वह अनुवाद पुस्तकाकार में प्रकाशित हो सका।

1960 में ही अखबारों में सोवियत–संघ में शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति का विज्ञापन देख एम.पी. ने आवेदन कर दिया। परमाणु ऊर्जा विभाग ने अलबत्ता उसे आगे नहीं भेजा। यह कारण बताते हुए कि विभाग में अन्य अवसर उपलब्ध है, अतः इस मौके का फायदा विश्वविद्यालय को लेने दिया जाये। एम. पी. ने सीधे डॉ. भाभा को एक पत्र लिखा कि क्यों उच्च–शिक्षा के लिए उन्हें सोवियत–संघ भेजा जाना चाहिये, कि किस तरह उन्होंने रशियन भाषा सीख ली है और उनके वहां पढ़ने जाने से विभाग को क्या फायदा होगा।

उस युवकोचित उत्साही पत्र पर डॉ. भाभा ने टीप लिखी कि अगला अवसर आते ही इस नौजवान को भेजा जाये। अवसर जल्द ही आ भी गया। वर्ष 1961 में। इस बार परमाणु ऊर्जा विभाग के लिए सरकार ने तीन स्थान आरक्षित रखे थे। एम.पी. ने परमाणु ऊर्जा केन्द्र के लिए आवेदन किया। वे चुन लिये गये। इस बीच सन् 1960 में उनकी शादी हो चुकी थी।

मास्को प्रवास

अक्टूबर 1962 में एम.पी. मास्को पहुंचे। वहां के मौसम में ठंडक घुल चुकी थी। आकाश बादलों से ढंका रहता था, लेकिन माहौल उत्सवी था। उनका सबसे बड़ा त्यौहार 'अक्टूबर क्रांति दिवस' नज़दीक जो था। एक सप्ताह में बादल छंटे। सूर्य चमचमाने लगा। ठंड बढ़ गयी। छुट्टियां खत्म हुईं। दुकान–दर–दुकान भटकने पर भी एम.पी. के नाप के कपड़े नहीं मिल रहे थे। उनके

सहयोगी ने युक्ति भिड़ायी। आखिर बच्चों के कपड़ों की दुकान में एम.पी. के नाप का ओवरकोट मिल सका।

मास्को में सब कुछ रोमांचित कर देने वाला था। जनवरी में तापमान माइनस 30 डिग्री तक उतर जाता। दिन में लगभग दो घंटे तो भिन्न–भिन्न कतारों में गुज़र जाते। तमाम कामों के लिए लंबी–लंबी कतारें लगतीं। 7 लेफोर्तोव्स्की वाल, बिल्डिंग नंबर 2, मास्को। यह उनका ठिकाना था। विक्टर माइबोगा उनके कमरे में साथ रहते थे। वे इलेक्ट्रिकल–इंजीनियरिंग के अध्यापक थे। एम.पी. वहां 'एस्पिरेंट' थे। परमाणु ऊर्जा केंद्र विभाग में पी.एच.डी. करने वालों को इसी संबोधन से पुकारा जाता था। बोरिस अलेक्सेंड्रोविच देम्येंतेव उनके मार्गदर्शक थे। हालांकि उस सरलमना व्यक्ति से एम.पी. को बहुत मार्गदर्शन नहीं मिल सका। एक शक्तिशाली महिला थेरेसा क्रिस्टोफोरोवा मार्गुलोवा उनकी प्राध्यापक और विभाग–प्रमुख थी। जो 'संक्षारण अध्ययन और जलोपचार' की विशेषज्ञ थीं। एम.पी. के प्रति उनका व्यवहार मातृतुल्य था।

विभाग का वातावरण पारिवारिक था। सप्ताहांत में वे लोग पिकनिक मनाने निकल पड़ते। इसी दौरान एम.पी. ने अपने सहकर्मियों से रशियन–क्रांति की कहानियां सुनी। खाते, पीते, हंसते, गाते उन खुशनुमा दिनों में ही वे वहां की असली राजनीति को समझ सके। दल के साथी उन्हें विदेशी होने का एहसास न होने देते थे। वे एम.पी. से उनके परिवार, केरल और भारतीय जीवन के बारे में जानकारियां लेते रहते थे।

मॉस्को के उस संस्थान में कोई बीस भारतीय वैज्ञानिक थे। सभी भारत के किसी न किसी शासकीय संस्थान में कार्यरत इंजीनियर थे। जब भी वे मिल बैठते, इस बात पर चिंता करते कि अपने अध्ययन का उपयोग वे अपने देश और समाज के विकास और भलाई के लिए नहीं कर पा रहे हैं। एम.पी. बेचैन थे। वे एक वामपंथी पृष्ठभूमि वाले परिवार से थे। अच्युत मेनन और ई.एम.एस. नम्बूदिरीपाद् जैसे दिग्गज कम्युनिस्ट नेताओं से उनके पिता की व्यक्तिगत

पहचान थी। मेनन तो पड़ोसी ही थे, जबकि पिता के छोटे भाई और ई.एम.एस. के बड़े भाई के बीच रिश्तेदारी थी। दोनों की पत्नियां आपस में बहने थीं।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सोवियत–संघ द्वारा अर्जित उपलब्धियों के एम. पी. प्रशंसक थे। वे मॉस्को में रहे थे। उस देश के कई हिस्सों की यात्राएं कर चुके थे। वहां आम आदमी का जीवन सुरक्षित था। रोजगार, वृद्धावस्था और बीमारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा उलपब्ध थी। बच्चों का जीवन सुरक्षित था। साधारण आवश्यकताओं सहित सभी के लिए मकान का बंदोबस्त था। बेरोजगारी नहीं थी। दयनीय गरीबी भी नहीं। वेतन या मज़दूरी के तौर पर वे लोग जो कुछ पाते, दो वक्त के भोजन के लिए पर्याप्त से अधिक था। सबसे बड़ी बात थी–बच्चों की शानदार देखभाल। शिशुगृहों और विद्यालयों में, जहां भी बच्चे नज़र आते, स्वस्थ और प्रसन्न दीख पड़ते।

एम.पी. स्वप्न देखने लगे। भारत के बच्चों के लिए ऐसे स्वास्थ्य और उनके चेहरों पर मुस्कानों के लिए कोई भी मूल्य चुकाना महंगा न होगा। भारत में क्रांति की जरूरत की दलील पर वे अडिग थे। पर कैसी क्रांति? तब तक भारत में कम्युनिस्ट पार्टी विभाजित हो चुकी थी। एम.पी. को प्रश्न सालता था– सीपीआई या सीपीआई (एम) कौन लायेगा ऐसी क्रांति? बंगाल से आये एक शोधछात्र पूर्णचंद्र दास ने इच्छुक भारतीय शोधार्थियों के लिए 'द्वंदात्मक भौतिकवाद' पर उन्हीं दिनों एक क्लास चलायी थी। एम.पी. उसमें जाने लगे। मार्क्सवाद–लेनिनवाद संस्थान, मॉस्को द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'मार्क्सवाद–लेनिनवाद के मूल तत्व' वे भारत में रहते हुए ही पढ़ चुके थे। इस तरह वे उस विचारधारा के और करीब हुए।

31 दिसम्बर 1964 की रात मॉस्को में रह रहे शोधार्थी भारतीय वैज्ञानिक नववर्ष का जश्न मना रहे थे। वोदका का असर था। वे अपने देश और समाज को लेकर भावनाओं में बहने लगे थे। भारत के राजनीतिक दलों की वे आलोचना कर रहे थे। बहकती बहस में एम.पी. ने एक ठोस सुझाव दिया कि साइंस और इंजीनियरिंग की कुछ सर्वश्रेष्ठ

किताबें केवल रशियन भाषा में ही हैं। यदि वे लोग उन्हें अंग्रेजी में उपलब्ध करा सके तो यह एक अच्छा काम होगा। वे सब रशियन जानते थे, अंग्रेजी और उन विषयों के भी ज्ञाता थे। कुछ साथी इस सुझाव के प्रति गंभीर थे।

मॉस्को प्रवास में एम.पी. ने दो तथ्यों पर गौर किया था– एक, सोवियत संघ के लोग घनघोर पढ़ाकू थे। भोजनालयों या दुकानों के आगे कतार में प्रतीक्षा करते, आधे से अधिक लोग कुछ न कुछ पढ़ रहे होते थे। दूसरा यह कि सोवियत–संघ में भी कमोबेश उतनी ही भाषाएं–बोलियां थी, जितनी भारत में। पर वहां पढ़ाई का माध्यम मातृभाषा या बोली ही होती थी। विद्यार्थी अपना शोधग्रंथ भी उज्बेक, अर्मेनियन, कज़ाक या अन्य प्रादेशिक भाषा में लिख सकता था। एम.पी.की धारणा बनी कि किसी भी राष्ट्र के लोगों की पहुंच ज्ञान के विस्तार तक बनाने के लिए जरूरी है कि वह उनकी भाषा के जरिये बने।

भारत के विकास के लिए जरूरी है कि सभी को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के साथ–साथ भारतीय भाषाओं में विज्ञान और तकनीक का ज्ञान मिल सके। एम.पी. का सुझाव था कि इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए भारत लौटकर एक बड़ा आंदोलन खड़ा करना चाहिये। व्यक्तिगत तौर पर उन्होंने मराठी और मलयालम भाषाओं में ऐसी पहल की जिम्मेदारी ली। मराठी इसलिए कि वे महाराष्ट्र में रह रहे थे। मलयालम तो उनकी मातृभाषा थी ही। दूसरे साथी उतने उत्तेजित नहीं थे। वे मानते थे कि भारतीय भाषाएं ऐसे विषयों के लिए उपयुक्त नहीं है। अपने अवचेतन में शहरीकृत अर्थव्यवस्था और लोकतंत्र के संबंधों और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के एक महत्त्वपूर्ण उभार की जरूरत को एम.पी. गहरे तक बैठा चुके थे। वे महसूस करते थे कि आम आदमी की विज्ञान और तकनीक की समझ के साथ इसे जोड़ना एक महत्त्वपूर्ण काम है।

व्यक्तिगत स्तर पर वे 1958–59 से ही मलयालम में अनुवाद का काम शुरू कर चुके थे। उन्होंने सेलिग हेच और यूगीन रोबिनोविच की किताब 'अणु का विवेचन' का अनुवाद किया था। जो कभी छप न पाया। उन्हें लगा कि हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिए वे 'परमाणु रिएक्टर थ्योरी' पर एक सरल किताब तैयार कर सकते हैं। उन्होंने 'परमाणु शास्त्र' नाम की वह किताब लिख भी डाली। जो 1966 में प्रकाशित हो पायी।

1963–64 से वे अंतरिक्ष विज्ञान और अन्य क्षेत्रों में सोवियत–संघ की तरक्की के बारे में 'मातृभूमि' में मदनगरली, मास्को के छद्म नाम से निरन्तर लिख रहे थे। विज्ञान पत्रकार बतौर वे स्थापित हो चुके थे। इस अनुभव ने उन्हें उत्साहित किया। 'परमाणु शास्त्र' में 'आइसोटॉप और रेडियो धर्मिता' पर लिखे गये एक अध्याय को सरल, सहज भाषा और विस्तारित रूप में लिखकर उन्होंने नवसाक्षरों के लिए लिखी जा रही पुस्तकों की प्रतियोगिता में भेज दिया था। जिसे पुरस्कार भी मिला। यह 1962 की बात है। वर्षों बाद जब एम.पी. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के साथ जुड़े, उन्हें अचरज हुआ कि उनकी उस किताब को वह पुरस्कार कैसे मिल गया था? वह तो नवसाक्षरों के लिए सर्वथा अनुपयोगी थी।

1962 में ही उन्होंने 'तारे और ग्रह' किताब लिखी। जिसे 1964 में बुनियादी और सांस्कृतिक साहित्य का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। इस तरह धीरे–धीरे वे एक विज्ञान लेखक बनते जा रहे थे। इस काम में उनके सम्मुख सबसे बड़ी समस्या वैज्ञानिक शब्दावली में उपयुक्त भाषायी शब्द ढूंढने की थी। उन्होंने नये–नये शब्द गढ़ना शुरू किया। 31 अक्टूबर 1965 में पी.एच.डी. पूरी होने पर नवम्बर 1965 में वे स्वदेश लौट आये। स्थानीय भाषा में विज्ञान लेखन के संकल्प को वे भूले नहीं थे।

केएसएसपी से जुड़ाव

विज्ञान और तकनीकी विषयों पर सरल भाषा में किताबें लिखने की अपनी योजना को उन्होंने मूर्तरूप देने की ठानी। त्रिशूर में वे अपने

रिश्तेदार एम.सी.वासुदेवन से मिले, जो एम.पी. की दोनों पुस्तको के प्रकाशक 'मंगलोदयम्' के प्रबंधक थे। उनसे एम.पी. ने अपनी योजना की चर्चा की और ऐसा संगठन बनाने की मंशा जाहिर की जो उस काम को आगे बढ़ा सके। वासुदेवन ने बताया कि ऐसा संगठन बनाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि वह तो पहले ही से मौजूद है– केरला शास्त्र साहित्य परिषद। पी.टी. भास्कर पणिक्कर, एम.एन. सुब्रह्मण्यन, कोन्नीयूर नरेन्द्रनाथ और के.जी.आदियोगी आदि जिसके प्रमुख थे।

वह पहला अवसर था जब एम.पी. ने 'केरला शास्त्र साहित्य परिषद्' के बारे में सुना था। तब तक उस संगठन को कोई 'केएसएसपी' नहीं कहता था। वह तो बरसों बाद जब डॉ. के.एन. राज के कहने पर के.पी. कन्नन ने 'इकॉनॉमिक एंड पोलीटिकल वीकली' में इस संगठन के बारे में एक लेख लिखा तो केरल के बाहर के लोग इस संगठन के बारे में जान पाये। उनके लिए यह संगठन 'केएसएसपी' नाम से ख़्यात हुआ।

एम.एन. सुब्रह्मण्यन कालीकट के सेंट जोसेफ हाई स्कूल में एम.पी. के चाचा विष्णु नम्बूदिरी के सहकर्मी थे। वासुदेवन ने उनसे मिलने का सुझाव दिया। वे 'चलते–फिरते इनसाइक्लोपीडिया' कहे जाते थे। उनसे एम.पी. जान पाये कि 1962 में स्थापना होने के बाद से यह संगठन क्या कुछ कर पाया है। पी.टी. भास्कर पनिक्कर से एम.पी. ने संगठन के सपनों, सीमाओं, सफलताओं और असफलताओं के बारे में विस्तार से जाना।

एम.पी. ने सुझाव दिया कि 'केरला शास्त्र साहित्य परिषद्' को एक विज्ञान–पत्रिका शुरू करना चाहिये। शुरुआत में जो त्रैमासिक हो सकती है। बम्बई में 'केरला शास्त्र साहित्य परिषद्' की एक शाखा खोलने और पत्रिका के लिए लगभग एक सौ लोगों का सदस्यता शुल्क और लगातार विज्ञान विषयक लेख भिजवाने का वायदा भी उन्होंने किया। ओरप्पलम में हुए 'केरला शास्त्र साहित्य परिषद्' के तीसरे वार्षिक अधिवेशन में इस संबंध में निर्णय ले लिया गया। 'शास्त्रगति' नाम से एक त्रैमासिक

विज्ञान–पत्रिका शुरू की गयी। स्थापित विज्ञान लेखक एम.सी. नम्बूदिरीपाद को उसका सम्पादक बनाया गया। एम.पी. ने अपने तमाम वायदे पूरे किये। उक्त पत्रिका का प्रकाशन सतत् जारी है। अब वह एक मासिक पत्रिका है।

1966 में एम.पी. ने 'शास्त्र साहित्य परिषद (मलयालम)' की मुम्बई में स्थापना कर ली। इसमें मुख्य तौर पर भाभा अणु शक्ति केन्द्र के वैज्ञानिक ही थे। शुरुआत में कोई साठ सदस्य बने। जो दरअसल तब केरल में केएसएसपी की कुल सदस्य संख्या से अधिक ही थे। एम.पी. उसके अध्यक्ष बनाये गये। संगठन की सक्रियता के लिए तय किया गया कि प्रत्येक महीने में एक बैठक की जाये। सदस्यों में से ही किसी के द्वारा लिखे गये विज्ञान विषयक लेख को बैठक में पढ़ा जाये। इससे मलयालम भाषा में विज्ञान–विषयों को समझने और व्यक्त करने की क्षमताओं का विकास होगा।

बैठक के लिए माह का दूसरा मंगलवार मुकर्रर किया गया। इस के पीछे भी एक कारण था। केरल में कुछ कर्म–कांडों में इस दिन को अशुभ माना जाता था, लिहाजा शुभ–अशुभ की अवैज्ञानिक धारणा को तोड़ने के लिए जान–बूझकर यह निर्णय लिया गया। इस तार्किक विद्रोह को बाद में केएसएसपी ने भी अपना लिया। वहां भी बैठकें मंगलवार को होने लगीं।

शुरुआती उत्साह के बाद धीरे–धीरे 'शास्त्र साहित्य परिषद (मलयालम)' की गतिविधियों में सदस्यों की रूचि घटने लगी। बैठकों में उपस्थिति चिंताजनक तौर पर कम होने लगी। एम.पी. ने नौकरी से छुट्टियां लेकर प्रत्येक सदस्य से प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्पर्क किया। मेहनत रंग लायी। उपस्थिति फिर बढ़ी। इससे यह सबक भी मिला कि जीवंत परंस्पर संबंध ही किसी संगठन–संस्था को बचाते और मज़बूत करते हैं। बाद के वर्षों में वह सबक बहुत काम का साबित हुआ। 'शास्त्र साहित्य परिषद (मलयालम)' को उसी वर्ष कानूनन पंजीकृत करवा लिया गया।

13 मई 1967 को त्रिशूर में केएसएसपी का चौथा वार्षिक सम्मेलन हुआ। एम.पी. उसमें हिस्सेदारी करने पहुंचे। उस एक दिवसीय सम्मेलन में एक सार्वजनिक संगोष्ठी में उन्हें 'मलयालम में तकनीकी शब्दावली की समस्या' विषय पर अपने विचार रखने थे। मास्को में रहते हुए एम.पी. शौकिया तौर पर अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली के समानार्थी मलयालम शब्द खोजने या गढ़ने का काम करने लगे थे। इस काम में उन्होंने 'केन्द्रीय हिंदी निदेशालय' द्वारा अनुशंसित सिद्धांतों का ही पालन किया था।

1. अंतर्राष्ट्रीय तौर पर मान्य भार, नाप, माप की इकाईयां, किसी विशेष नाम पर आधारित पारिभाषिक शब्द, स्थानीय भाषा में पहले ही स्वीकृत कर लिये गये विदेशी शब्द, नये तत्वों, यौगिकों, द्विसंज्ञक नामावली आदि का अनुवाद न कर उनका सिर्फ लिप्यांतरण करना।
2. जड़ अर्थ का अनुवाद करने की बजाय ऐसा शब्द तैयार करना जो वास्तविक और अवधारणात्मक अर्थों को स्पष्ट कर सके।
3. यथासंभव अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकृत शब्दावली का प्रयोग करना। उपसर्ग, शब्द–युग्म आदि की विधि इस काम के लिए अपनाना।

संगोष्ठी की दोपहर बाद की बैठक में निर्णय लिया गया कि मलयालम में पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दावली का प्रकाशन किया जाये। 13 सितम्बर 1967 में 'मातृभूमि' के संस्करण में 700 शब्दों की ऐसी शब्दावली प्रकाशित की गयी। इन्हीं गतिविधियों के बीच मुंबई में रहते हुए एम.पी. फरवरी 1966 में मराठी के प्रतिष्ठित विज्ञान लेखक, खालसा कॉलेज, माटुंगा के प्राचार्य डॉ.सी.एस. कर्वे से मिले। एम.पी. ने उन्हें मराठी में विज्ञान साहित्य के व्यापक प्रचार का सुझाव दिया। डॉ. कर्वे ने बताया कि कुछ साथियों के साथ मिलकर वे ऐसा एक संगठन बनाने पर विचार कर ही रहे है। उन्होंने

एम.पी. से अनुरोध किया कि वे समूह के अन्य साथियों—मधुकर गोगटे, प्रो.बी.एस. बर्वे आदि से मिलकर चर्चा करें।

एम.पी. इन लोगों से भी मिले। उन्हें केएसएसपी की गतिविधियों से अवगत कराया। उनकी कुछ तैयारी बैठकों में भी शरीक हुए। अप्रैल 1966 में 'मराठी विज्ञान परिषद' की स्थापना की गयी। डॉ. आर.वी. जोशी उसके संस्थापक अध्यक्ष और श्री गोगाटे संस्थापक सचिव मनोनीत किये गये।

भाभा अणु शक्ति केन्द्र में बड़ी संख्या में वैज्ञानिक और तकनीशीयन थे। 1966 में एम.पी. ने प्रतिनिधि वैज्ञानिकों की एक बैठक बुलायी। जिसमें पंजाबी के प्रतिनिधि स्वरूप प्रो.यशपाल आये। कन्नड़ के डॉ. एम.आर. श्रीनिवासन, तेलगु के डॉ. एन.के. राव, तमिल के डॉ. आर.आर. डेनियल, गुजराती के डॉ. एस.एच.त्रिवेदी और हिंदी के डॉ. कामत शामिल हुए। डॉ. कृष्णमूर्ति, डॉ. दिवाकरन और कुछ अन्य साथी भी इस बैठक में आये। तमाम विभागों में काम कर रहे वैज्ञानिकों, सहायकों और अधिकारियों के नामों की सूचियां भी उन्हें मिल गयी। सबकी मातृभाषानुसार उन्हें विभाजित किया गया। शीघ्र ही ऐसी सूचियां बन गयी जिनमें तमिल, तेलगू, कन्नड़, गुजराती, हिंदी और बंगाली भाषी वैज्ञानिकों के सैकड़ों नाम शामिल थे। असमी, पंजाबी और उड़िया भाषा में अपेक्षाकृत कम नाम थे।

अगली चुनौती थी इन भाषायी समूहों की अलग—अलग बैठकें करना। उनकी भाषाओं में विज्ञान के लोकव्यापीकरण की चर्चा करना। उसके लिए योजनाएं बनाना। संगठन तैयार करना। जल्द ही वहा 'कन्नड़ विज्ञान परिषद', 'शास्त्र साहित्य (तेलगु)', 'विज्ञान तमिल वालार्ची कझाकोम', 'हिन्दी विज्ञान परिषद' और 'गुजराती विज्ञान परिषद' आदि स्थापित हो गयी।

1967 की शुरुआत में इन तमाम संगठनों का एक संघ बनाने का विचार सामने आया। 'फिल्सा'—फेडरेशन ऑफ इंडियन लैंग्वेज साईंस एसोसिएशन' का शुभारंभ खालसा कॉलेज के सभागार में न्यायाधीश

डॉ. पी.बी. गजेन्द्र गड़कर के हाथों सम्पन्न हुआ। वह गहमागहमी भरा एक रंगारंग समारोह था। पूणे विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ.आर.बी. जोशी को 'फिल्सा' का अध्यक्ष और एम.पी. और एम.एन. गोगाटे को सचिव मनोनीत किया गया। कहा जा सकता है कि भविष्य में बनने वाले एआईपीएसएन (अखिल भारतीय जनविज्ञान नेटवर्क) का, 'फिल्सा' बीज—रूप था। दो वर्षों में ही 'फिल्सा' ने अनेक संगोष्ठियों का आयोजन किया। विभिन्न भारतीय भाषाओं में चार पुस्तकों का अनुवाद कर उन्हें प्रकाशित भी किया।

वर्ष 1967 के अंतिम महीने थे। एम.पी. और डॉ. ए.डी. दामोदरन की गर्भवती पत्नियां प्रसव के लिए केरल गयी हुई थीं। डॉ. दामोदरन के घर में रसोईंया था, अतः एम.पी. उनके साथ ही रहने चले गये थे। डॉ. दामोदरन केरल के मुख्यमंत्री ई.एम.एस. नम्बूदिरीपाद के दामाद थे। उन्हीं दिनों ई.एम.एस. वहां आये और उन लोगों के साथ ठहरे। एम.पी. को मलयालम में 'ए' से 'के' तक के पारिभाषिक विज्ञान शब्द—संग्रह के अलावा कुछ किताबें लिखते देख ई.एम.एस. ने उनके प्रकाशन की योजना के बारे में पूछा। एम.पी. के पास उस प्रश्न का समुचित उत्तर नहीं था। ई.एम.एस. का प्रस्ताव था कि अन्यथा कोई दिक्कत न हो तो भारत की कम्युनिस्ट पाटी (मार्क्सवादी) द्वारा उनका प्रकाशन किया जा सकता है।

कुछ ही महीनों बाद डॉ. त्रिगुण सेन केंद्रीय शिक्षा मंत्री बने। उन्होंने प्रत्येक राज्य को हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं में विश्वविद्यालयीन स्तर की पाठ्य—पुस्तकें तैयार करने के लिए एक—एक करोड़ रूपये का अनुदान देने का प्रस्ताव रखा था। एम.पी. ने डॉ. सेन को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि वे मलयालम के 'पारिभाषिक विज्ञान शब्द—संग्रह' को प्रकाशित करवाने में मदद करें। जवाब आया कि उस उद्देश्य के लिए सरकार अलग संस्थान बनाने पर विचार कर रही है। जिसके बनते ही इस काम को हाथ में लिया जायेगा। सितम्बर 1968 में केरल में 'प्रादेशिक भाषा संस्थान' का गठन हुआ। एन.वी. उसके निदेशक बनाये गये।

एम.पी. ने तुरंत उन्हें एक नोट लिख भेजा। जिसमें कई महत्त्वकांक्षी योजनाएं प्रस्तावित की गयी थीं। एन.वी. का जवाब आया–'यहां सहायक निदेशक, तकनीकी विज्ञान का पदभार संभालो और अपनी योजनाओं को पूरा करो।' एम.पी. ने आग्रह किया कि प्रदेश सरकार उन्हें प्रतिनियुक्ति पर वहां बुलाने की कार्रवाई करे, वे आने को तैयार हैं। इन तमाम वर्षों में भाभा अणु शक्ति केन्द्र के भीतर भी एम.पी. अनेक तरह की गतिविधियां चलाते रहे थे। उन्होंने तो वहां अधिकारियों का एक संगठन–'बारकोआ' (भाभा एटॉमिक रिसर्च सेंटर ऑफीसर्स एसोसिएशन) तक बना डाला था और 'बार्क' के निदेशक डॉ. एच.एन. सेठना को उसका अध्यक्ष बन जाने के लिए भी मना लिया था। खुद एम.पी. उस संगठन के सचिव थे। हालांकि वहां का प्रबंधन उनकी गतिविधियों से खुश नहीं था। संगठन अधिक वेतन या आवास व्यवस्था की मांग नहीं करता था। उसकी मांगे थीं–गंभीर शोध के अधिक अवसर, विभागों के बीच चलती रहने वाली अकारण खींचा–तानी को रोकना और केंद्र के रिसर्च एजेंडा में वैज्ञानिकों की अधिक भागीदारी सुनिश्चित करना।

ये तमाम मांगे ऐसी थीं जिन्हें प्रबंधन स्वीकार नहीं करना चाहता था, पर उन्हें खारिज भी तो नहीं कर सकता था। उच्चतम स्तर तक मातृभाषा में पढ़ाई उपलब्ध करवाने और तमाम भाषाओं में विज्ञान साहित्य तैयार करने बाबत् एम.पी. की मुखर पैरवियों के कारण भी वे बहुतेरों की निगाहों में चुभने लगे थे। क्या आश्चर्य कि जनवरी 1969 में केरल सरकार ने एम.पी. को अपने यहां प्रतिनियुक्ति पर भेजने के लिए भाभा अणु शक्ति केंद्र के साथ अपनी काग़जी कार्रवाई शुरू की और मार्च 1969 में उन्हें उनके प्रबंधन ने सहर्ष भारमुक्त कर दिया।

प्रादेशिक भाषा संस्थान, केरल के दिन

एम.पी. ने जल्द ही त्रिवेंद्रम जाकर प्रादेशिक भाषा संस्थान, केरल में पदभार संभाल लिया। वे तकनीकी विभाग के सहायक निदेशक थे। उनके अलावा वहां सामाजिक–विज्ञान, भौतिक–विज्ञान और जीव–विज्ञान विभागों में भी सहायक निदेशक आ चुके थे। उन्हीं दिनों में एम.पी. की मुलाकात सी.पी. नारायणन से हुई। वे 'युवा–भावना' नाम का एक जर्नल निकाला करते थे। सी.पी., केएसएसपी के संस्थापकों में से थे। धीरे–धीरे 'भाषा संस्थान' और केएसएसपी के बीच मिल–जुलकर नये काम करने का वातावरण विकसित होने लगा था।

विश्वविज्ञान कोश के सम्पादक बन कर पी.टी.बी. भी उस दौरान त्रिवेंद्रम आ गये थे। युवा टी.के. कोचुनारायणन उनके सहायक थे। दोनों ने मिलकर एक नयी पत्रिका के प्रकाशन की जिम्मेदारी भी ले ली। हाईस्कूल स्तर के विद्यार्थियों को ध्यान में रख निकलने वाले इस मासिक 'शास्त्र केरलम्' का जून 1969 से प्रकाशन भी शुरू हो गया।

'प्रादेशिक भाषा संस्थान' का घोषित काम था– इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कृषि, कानून आदि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों सहित विश्वविद्यालयीन शिक्षा के उच्चतम स्तर तक के लिए पाठ्य–पुस्तकें तैयार करना। इसके लिए कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का मलयालम में अनुवाद का काम शुरू किया गया। इसके अलावा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों सहित सभी विषयों के प्राध्यापक मलयालम माध्यम से पढ़ा सके, इसका अभ्यास करवाना भी एक काम था। जिसके लिए अनेक महाविद्यालयों में कार्यशालाएं आयोजित की जाती थीं।

केएसएसपी में बढ़ती जिम्मेदारी

अप्रैल–मई 1969 में केएसएसपी की त्रिशूर शाखा ने एक अभिनव कार्यक्रम तैयार किया। जिन बच्चों ने हाईस्कूल परीक्षा दी ही थी, उनके लिए दस–दिवसीय पाठ्यक्रम तैयार किया गया। जिससे आने वाले वर्षों में जो विषय उन्हें पढ़ने थे, उनका परिचय वे पा सकें। महाविद्यालय में सहज रह सकें। एक दिन एक दिलचस्प वाकया हुआ। सेंट थॉमस

कॉलेज के श्री अब्राहम भौतिकशास्त्र पढ़ा रहे थे। उनकी कक्षा में सबसे पिछली बेंच पर एक अनोखा विद्यार्थी आ बैठा था। ई.एम.एस. नंबूदिरीपाद। केरल के मुख्यमंत्री। बच्चों का ध्यान न बंटे इसलिए वे चुपचाप आकर पीछे बैठ गये थे। कक्षा समाप्त होने पर वे बोले कि यदि जानते होते कि भौतिकी इतना दिलचस्प है तो वे विज्ञान ही पढ़ते। बाद में केएसएसपी की अन्य इकाईयों में भी यह प्रयोग किया जाने लगा। कुछ स्थानों पर यह अब भी जारी है।

केएसएसपी के दो प्रकाशन तो पहले ही से थे। प्रौढ़ों और उच्च अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों के लिए 'शास्त्रगति' और हाईस्कूल स्तर के बच्चों के लिए 'शास्त्र केरलम्'। दिसंबर 1969 में शोर्णुर में हुए केएसएसपी के सांतवें वार्षिक सम्मेलन में विचार बना कि प्राथमिक शाला के बच्चों के लिए भी एक पत्रिका शुरू की जाये। पत्रिका का नाम 'यूरेका' तय हुआ। त्रिशूर जिला समिति को इसके प्रकाशन की जिम्मेदारी दी गयी। वी.आर. सनकुन्नी इसके सम्पादक बनाये गये। जून 1970 में 'यूरेका' का पहला अंक प्रकाशित हुआ। बाद में यह सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक बन गया। तब इसे पाक्षिक कर दिया गया।

केएसएसपी का आठवां वार्षिक सम्मेलन एर्नाकुलम में हुआ। 'सत्तर के दशक में तकनीकी मलयालम' विषय पर संगोष्ठी और शहर की गलियों में नारे लगाते हुए चलने वाला जत्था, इस सम्मेलन की विशेषता थे। जत्थे का आकर्षण सबके दिलो–दिमाग पर छा गया। जनवरी 1972 के पहले हफ्ते में केएसएसपी का नौवां वार्षिक सम्मेलन तिरूवला में होना तय हुआ था। तय यह भी हुआ कि वैज्ञानिकों के दो जत्थे निकाले जायें। पहला त्रिवेन्द्रम से शुरू होना था, दूसरा कालीकट से। श्रीकुमार के उत्साह के चलते एक तीसरे जत्थे की योजना भी बनी। यह शोर्णुर से चलना था। सभी को एक ही वक्त तिरूवला पहुंचना था। जत्थों के दौरान पूर्व निर्धारित स्थानों पर ठहरना और वहां के लोगों के साथ चर्चा करने के कार्यक्रम

शामिल थे। एम.पी. दक्षिणी जत्थे के प्रबंधक थे। यही पहला अनुभव, भविष्य में होने वाले तमाम देशव्यापी जत्थों की आधारशीला बनना था।

इस सम्मेलन में एम.पी. को केएसएसपी के सचिव पद की जिम्मेदारी दी गयी। डॉ. माधवनकुट्टी अध्यक्ष मनोनीत किये गये। इन्हीं दिनों में एम.पी. की मुलाकात एक समर्पित विज्ञान शिक्षक सी.जी. से हुई। उन्होंने 'स्कूल चलो' का नारा दिया था। 'शास्त्र केरलम' और 'यूरेका' जैसी पत्रिकाओं को स्कूलों तक ले जाने में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। त्रिशूर जिले के स्कूलों में उन्होंने विज्ञान–क्लबों की स्थापना की। बाद में बच्चों के लिए ऐसे क्लब स्थापित करना केएसएसपी का महत्त्वपूर्ण अभियान बना।

एक हज़ार कक्षाएं

1972 के अंत तक प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि केएसएसपी के आगामी वार्षिक सम्मेलन में क्या नवीनता लायी जाये। एर्नाकुलम सम्मेलन में स्थानीय जत्था किया गया था। तिरूवला सम्मेलन में तीन प्रदेशव्यापी जत्थे किये जा चुके थे। अब क्या? एम.पी. ने इसके ठीक पहले ही एक प्रदेशव्यापी दौरा खत्म किया था। जिसमें उन्होंने स्थान–स्थान पर 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' पर कक्षाओं में अपनी बात रखी थी। दो अन्य साथी डॉ. मैथ्यु कुरियन और के.आर.एस. नायर भी साथ होते थे। वे दूसरे विषयों पर बोलते थे। वह अनुभव ताजा–ताजा ही था। उन्होंने उसी आधार पर एक विचार पेश किया कि केएसएसपी प्रदेश भर में एक हजार कक्षाएं आयोजित करे। जिनमें तीन मुद्दों पर चर्चा की जाये। ब्रह्माण्ड का विकास, मानव का विकास और विज्ञान का विकास। उनके सुझाव पर पीटीबी बोले–'तैयारी करो, बाकी व्यवस्थाएं मैं देखता हूं।' पहले दो विषयों पर एम.पी. और तीसरे पर पी.जी. ने पाठ तैयार किये। जिन्हें 'शास्त्र केरलम्' के एक विशेष अंक में छापा गया। 1 से 7 जनवरी 1973 तक चले विज्ञान–सप्ताह के दौरान प्रदेश भर में केएसएसपी के कार्यकर्ताओं और

हमदर्द साथियों ने एक हजार से भी अधिक कक्षाओं का आयोजन किया। इससे अनेक नये लोग भी संगठन के प्रति आकर्षित हुए। कक्षाओं की इस शृंखला ने केएसएसपी के लोगों का वैश्विक दृष्टिकोण निर्मित और मज़बूत किया। कालांतर में विकसित हुए 'जन विज्ञान आंदोलन' के अनेक संगठनों के आंदोलनकारी साथियों को भी इससे बहुत मदद मिली।

आज इन कक्षाओं को 'प्रकृति, विज्ञान और समाज' नाम से जाना जाता हैं। इन कक्षाओं को एक दार्शनिक कड़ी में पिरोया गया था। सरलतम रूप से जिसे इस तरह रखा जा सकता है–

- ब्रह्माण्ड के बाहर कुछ नहीं है।
- ब्रह्माण्ड का न आदि है न अन्त ही, वह निरन्तर बदलता रहता है।
- प्रेम, भय, घृणा आदि अभौतिक भावनाओं का आधार कोई भौतिक तत्व ही होता है।
- गति या परिवर्तन ही ब्रह्माण्ड के अस्तित्व की प्रणाली है।
- ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु एक–दूसरे से संबंधित है।
- जो जीवन आज ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, वह एक बेहद लम्बे विकासक्रम के परिवर्तनों का परिणाम है।
- शुरुआती दिनों में जीवन ही विज्ञान था।
- विज्ञान के बुनियादी सिद्धांत–साधारणीकरण और सारांशीकरण हमारी भाषाओं में गहरे निहित हैं।

1973 की जनवरी के अंत में कालीकट में केएसएसपी का दसवां वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया गया। एम.पी. की प्रतिनियुक्ति का समय समाप्त होने के कारण उन्हें पुनः मुंबई के भाभा अणु शक्ति केंद्र में लौटना था। अतः नये सचिव के रूप में आर. गोपाल कृष्णन नायर को मनोनीत किया गया। उस अधिवेशन में साधारण–सभा में पदाधिकारियों के अलावा

300 चुने हुए प्रतिनिधियों को लेने का संशोधन, संगठन के संविधान में किया गया। सम्मेलन में अन्य महत्त्वपूर्ण निर्णय भी लिये गये, मसलन केएसएसपी को विश्वविद्यालयों तथा 'शोध. एवं विकास' के अन्य संस्थानों में अपनी गतिविधियों को मज़बूत करना चाहिये और विज्ञान–शिक्षण पर अधिक जोर देना चाहिये।

इस सम्मेलन के कुछ दिनों बाद राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से संबंधित हिंदूवादी साप्ताहिक 'केसरी' ने केएसएसपी को बधाई दी कि उसने अपनी कार्यकारिणी में किसी भी मुसलमान को न चुनने का विवेक दिखाया है। साप्ताहिक का यह लिखने का उद्देश्य जो भी था, केएसएसपी के साथियों ने पाया कि यह एक कड़वी सच्चाई थी। हालांकि केएसएसपी में काम करते हुए जाति–धर्म के प्रश्न सामने ही नहीं आते थे। अतः धार्मिक या जातीय संतुलन बनाकर कार्यकारिणी चुनने का प्रश्न न तब था ना ही आज है। पर 'केसरी' को समुचित उत्तर देने के लिए उस वक्त एम.एम. बाबा को समिति में शामिल किया गया था।

यद्यपि सम्मेलन की स्मारिका में पिछले कामों पर एक विचारपूर्ण दृष्टि डाली गयी थी, तब भी वह पर्याप्त आत्मालोचनात्मक नहीं थी। साधारण–सभा में भी संगठन के दशक भर लंबे अनुभवों पर विस्तार से चर्चा नहीं हो पायी थी। हां, तब तक केएसएसपी तीन जर्नल प्रकाशित करने लगा था। स्कूलों में विज्ञान–क्लब स्थापित किये जा रहे थे। हाईस्कूल की परीक्षा दे चुके छात्रों के लिए आधार कक्षाएं लगायी जाती थीं। एक प्रकाशन संस्था – स्टेप्स (साइंटिफिक टेक्निकल एंड एजुकेशनल को–ऑपरेटिव पब्लिशिंग सोसायटी) शुरू की जा चुकी थी। विज्ञान–जत्थे आयोजित किये जा चुके थे। एक ही सप्ताह में एक हजार कक्षाएं लगायी जा चुकी थीं। तब भी लगता था कि यह पर्याप्त नहीं है।

पुरावक्ती राजनीतिक कार्यकर्ता

मार्क्सवाद के प्रति एम.पी. का थोड़ा–बहुत झुकाव विद्यार्थी काल से ही था। मास्को जाकर, वहां का जीवन देखकर वे साम्यवाद से और प्रभावित हुए। 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धांत को जानने–समझने का उन्हें अवसर मिला। उन्हें महसूस हुआ कि एक क्रांति से ही भारत की गरीब, दुखी, पीड़ित और वंचित जनता का भला संभव है। सामाजिक उत्थान में विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के महत्त्व को उन्होंने केएसएसपी से जाना। ई.एम.एस. नम्बूदिरीपाद और अन्य वामपंथी विचारकों–नेताओं से निकटता ने भी उन्हें इस विचारधारा की तरफ आकर्षित किया।

1967 में केरल सरकार ने चौथी पंचवर्षीय योजना पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया था। शास्त्र साहित्य परिषद (मलयालम), मुंबई की तरफ से कुछ अन्य लोगों के साथ मिलकर एम.पी. ने 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी' तथा 'शिक्षा' विषयों पर दो लेख लिखने–भेजने में योगदान दिया था।

वर्ष 1969 में केरल के और कुछ अन्य बुद्धिजीवियों ने मिलकर 'इंडियन स्कूल ऑफ सोशल साइंस' की स्थापना की थी। जिसने 1969 के साल में त्रिवेन्द्रम में 'सामाजिक विज्ञानों में शोध' विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की। इस संगोष्ठी में दो दिलचस्प वाकये हुए। आयोजन समिति की तरफ से आगन्तुकों का स्वागत करने के लिए एम.पी. समय पूर्व ही आयोजन स्थल पहुंच गये थे। बदरंग होता आधी बाहों का शर्ट पहने और उससे भी अधिक बदरंग कपड़े का झोला लिये एक वयोवृद्ध सज्जन वहां पहुंचे। वे किसी भी कोण से 'बुद्धिजीवी' नहीं दिख रहे थे। ऐसी संगोष्ठी में उनकी कोई महती भूमिका न देख एम.पी. ने उन्हें पिछली पंक्ति की एक कुर्सी पर बैठा दिया। बाद में जब वरिष्ठ नेता आने लगे तो एम.पी. ने पाया कि वे सभी उन्हीं सज्जन के पास जाकर उनसे बड़े आदर से पेश आ रहे

थे। पता चला वे पी. सुंदरैय्या थे। एम.पी. को अपने किये पर बेतरह शर्मिंदगी महसूस हुई।

प्रो.वी.वाय. कोल्हटकर के संगोष्ठी में त्रिवेंद्रम न आ पाने से उनका शोध पत्र पढ़ने का काम एम.पी. को सौंपा गया। उसे पढ़ने के बाद अपने विचार जोड़ते हुए एम.पी. ने मान्य चार अंतर्विरोधों के अलावा समाजवादी देशों के भीतर की असंगतियों के कारण उपजे पांचवे अंतर्विरोध की बात रखी। सोवियत–संघ, चीन और बुल्गारिया जैसे देशों के बीच के संबंधों के कारण एम.पी. का यह विचार बना था। सोवियत–संघ और चीन जैसे दिग्गज समाजवादी देश आपसी युद्ध की कगार पर थे। उनके वक्तव्य पर पश्चिम बंगाल से आए साथियों ने कहा कि यह व्यक्ति मार्क्सवाद का ककहरा भी नहीं जानता। जो उस वक़्त तक एक सच्चाई ही थी। यह तो बाद में चलकर हुआ कि एम.पी. ने न केवल मार्क्सवाद पढ़ा बल्कि लम्बे समय तक पढ़ाया भी।

1969 में ही ई.एम.एस. की जीवनी का पहली दफा प्रकाशन हुआ। जिसे 'देशाभिमानी बुक हाउस' ने छापा था। मुद्रण और प्रकाशन का अनुभव होने के चलते सी.पी. नारायणन को इसके प्रकाशन की जिम्मेदारी दी गयी थी। एम.पी. उन्हें सहयोग दे रहे थे। इसके कुछ ही महीनों बाद 1970 में सी.पी. ने एम.पी. से प्रश्न किया कि क्या वे पार्टी का सदस्य होना चाहेंगे? कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता पाना एक विशेष सम्मान माना जाता था। तब तक सी.पी. नारायणन (जो वर्तमान में राज्यसभा सदस्य हैं) भी पार्टी के हमदर्द ही थे, बाकायदा सदस्य नहीं थे। इन दोनों के अलावा वहां 'इंडियन स्कूल ऑफ सोशल साईंस' में सक्रिय कुछ अन्य बुद्धिजीवियों को पार्टी ने सदस्यता दी थी।

मार्च 1973 में एम.पी. अपनी पदस्थापना के मूल विभाग मुंबई स्थित भाभा अणु शक्ति केन्द्र लौट आये थे। तब तक वे नौकरी छोड़कर पुरावक्ती राजनीतिक कार्यकर्ता बन जाने का निश्चय कर चुके थे। वे पार्टी के

प्रकाशन–प्रभाग को गति देने का इरादा रखते थे। नौकरी छोड़ने के पहले, 'बार्क' में 'शोध और विकास' का जो काम वे कर रहे थे, उसे किसी और को सौंपना था। दिसम्बर 1974 में 'इंडियन स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज़' का तीसरा अखिल भारतीय अधिवेशन मुंबई में होना था। एम.पी. को उसके मुख्य समन्वयक की जिम्मेदारी दी गई थी, लिहाजा यह सब होने तक उन्हें मुंबई में ही रुकना था।

अक्टूबर 1973 में एम.पी. महीने भर के लिए केरल गये। वहां पी.टी.बी. के साथ एक रोज अंतरंग चर्चा करते हुए उन्होंने अपने मन में केएसएसपी को लेकर उठने वाले अनेक प्रश्नों को सांझा किया। पिछले कुछ वर्षों से, जब से वे केएसएसपी के साथ गहरे जुड़कर काम कर रहे थे, वे खुद और संगठन के बारे में आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया से भी गुजर रहे थे। कई दूसरे साथी भी ऐसी ही प्रक्रिया में थे। दस वर्षों में आखिर केएसएसपी ने हासिल क्या किया है? आम तौर पर 'शब्द' को ही 'विज्ञान' का वाहक नहीं मान लिया गया है? क्या लिखे हुए और बोले गये, दोनों ही तरह के 'शब्दों' से कुछ अनचाही आसक्ति नहीं रही है? विज्ञान, किताबों और प्रयोगशालाओं में पलता–बढ़ता है या खेतों–कारखानों में?

एम.पी. और पी.टी.बी. ऐसे तमाम प्रश्नों से जूझते रहे। मार्क्सवाद के विद्यार्थी होने के नाते दोनों सहमत थे कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का बड़ा हिस्सा, मनुष्य और प्रकृति के बीच हो रही आर्थिक–उत्पादन की गतिविधियों से ही बनता, विकसित होता है। विज्ञान, जितना हमारे दिमाग में होता है, उतना ही हमारी उंगलियों के पोरों पर भी होता है। यदि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बढ़ते दायरे में सचमुच जनता को लाना है, तो उत्पादन प्रक्रिया से जुड़कर ही ऐसा किया जा सकता है। महज किताबों के जरिये नहीं। सच्चा उत्पादन तो प्राथमिक और अनुषंगी क्षेत्रों में ही होता है। उत्पादन का बड़ा हिस्सा गांवों से आता है। खेती से, पशुपालन से,

कुटीर और पारम्परिक उद्योगों से। अतः केएसएसपी को गांवों तक पहुंचना होगा। गांवों से होने के बावजूद केएसएसपी के अधिकतर कार्यकर्ता कस्बों और शहरों में रह रहे थे। किसानों और दस्तकारों से उनका सीधा संबंध कभी–कभार ही बनता था। उन्हें वनस्पति–शास्त्र पता हो सकता था, शायद कृषि–विज्ञान भी, पर खेती करना उन्हें नहीं आता था। अपने तालाबों के पर्यावरण, बुनाई या नारियल के रेशों के उद्योगों, धातु–उद्योग या हस्तशिल्पों के बारे में उन्हें बहुत ही कम मालूम था। रोजमर्रा काम आने वाले विज्ञान के बारे में बहुत ही कम सोचा–विचारा गया था।

इस चिंतन से एक उपाय सूझा। गर्मियों अथवा अन्यथा ही छुट्टियां लेकर केएसएसपी के कार्यकर्ता पुश्तैनी या अन्य गांवों में जाकर रहे। किसानों और दस्तकारों से सीखे, संवाद करे। उत्पादन गतिविधियों में सचमुच सहायता कर सकने वाले ऐसे व्यक्तियों को तलाशे, जो उसी इलाके के हों और जिन्होंने औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया हो या जो जानकारी सम्पन्न हो, विज्ञान और तकनीकी के विशेषज्ञ हों।

यहीं 'रूरल साईंस फोरम' (आरएसएफ) की अभिकल्पना का बीज रूप था। पी.टी.बी. और वी.के.डी. के साथ मिलकर एम.पी. ने एक पर्चा तैयार किया। जिसे उत्तर क्षेत्रीय कामगार शिविर में प्रस्तुत किया जाना था। हालांकि मुंबई लौट जाने के कारण एम.पी. उस शिविर में शामिल नहीं हो पाये। उस नोट को अलबत्ता वहां स्वीकार लिया गया। बाद में औपचारिक तौर पर उसे केएसएसपी की गतिविधियों में भी शामिल कर लिया गया। 'रूरल साईंस फोरम' पर लिखी गयी पुस्तिका एक क्रांतिकारी दस्तावेज साबित हुई। जो कोई दो दशक बाद हुए 'पीपुल्स प्लान कैम्पेन' (जन योजना अभियान) का बीज मंत्र बनी।

जनवरी 1974 में केएसएसपी का ग्यारहवां वार्षिक सम्मेलन त्रिवेन्द्रम में हुआ। जिसमें 'केरल का औद्योगीकरण' विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गयी। जिसमें अन्य राज्यों के प्रतिनिधियों ने भी हिस्सेदारी की थी। यही वह सम्मेलन था जिसमें 'सामाजिक क्रांति के लिए विज्ञान' का नारा दिया गया था। सच है कि उस वक्त 'क्रांति' की अवधारणा स्पष्ट नहीं थी। बाद के वर्षों में भी यह धारणा बनती–बिगड़ती रही है। फिर भी सत्तर–अस्सी के दशक में उक्त नारे ने अनेक विज्ञान–कर्मियों को उत्तेजित बनाये रखा।

एम.पी. का उत्साह बरकरार था। दिसम्बर 1974 में मुंबई में 'इंडियन स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज़' का तीसरा अखिल भारतीय अधिवेशन सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। एम.पी. के लिए व्यक्तिगत तौर पर यह उत्साहजनक किंतु थका देने वाला अनुभव रहा। उन्हें ई.एम.एस., अशोक मित्र और अन्य बड़े नेताओं का सानिध्य मिला।

नौकरी से त्यागपत्र का नोटिस तो वे दे ही चुके थे। अधिवेशन के हिसाब–किताब को अंतिम रूप दे देने पर वे मुंबई को छोड़ देने की तैयारी करने लगे। हालांकि कुछ साथियों का सुझाव था कि पार्टी का काम करने के लिए नौकरी छोड़ देने की जरूरत नहीं है। मुंबई में पार्टी में अनेक साथी थे, जो कहीं–कहीं नौकरियां कर रहे थे। इस मामले में एम.पी. का अनुभव अच्छा नहीं था। वे देखते थे कि ऐसे साथियों के लिए पार्टी का काम रविवारीय छुट्टी में किये जाने वाले काम की तरह था। वे ऐसा नहीं करना चाहते थे।

खुद की आर्थिक जरूरतों का अनुमान उन्हें था। उन्होंने तय कर रखा था कि वे पार्टी पर आर्थिक बोझ नहीं बनेंगे। लिखकर या अन्य उपायों से अपनी आर्थिक जरूरतें पूरी करेंगे। उनका विश्वास था कि एक साथ क्रांति और सुरक्षा संभव नहीं है। इनमें से किसी एक को ही चुनना होगा। उन्होंने 'क्रांति' को चुना। अन्ततः मार्च 1975 में वे पार्टी के पुरावक्ती

कार्यकर्ता बन केरल लौटे। यह एक परमाणु वैज्ञानिक के राजनीतिक आंदोलनकर्मी और लेखक–प्रकाशक बनने की शुरूआत थी। केरल में एक सुखद आश्चर्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वहां 'चिंता–प्रकाशन' के कोर समूह का गठन किया जा चुका था। सी.पी. नारायणन प्रादेशिक भाषा संस्थान की नौकरी छोड़ चुके थे। पुरावक्ती राजनीतिक कार्यकर्ता बन वे पार्टी की राज्य समिति के सैद्धांतिक साप्ताहिक 'चिंता' की जिम्मेदारी संभाल रहे थे। पेशे से चार्टर्ड एकाउण्टेंट, ई.एम.एस. के ज्येष्ठ पुत्र ई.एम. श्रीधरण भी अपना काम छोड़, पार्टी के प्रकाशन संस्थान को खड़ा करने में जुट गये थे। इन दोनों कर्मठ साथियों के साथ एम.पी. को उक्त कोर समिति में शामिल किया गया था।

चिंता प्रकाशन' की शुरुआत 'मार्क्सवाद–एक पाठ्यपुस्तक' के प्रकाशन के साथ हुई। 1972 में उनके द्वारा 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' पर लिखी गयी एक छोटी सी पुस्तिका भी उसमें शामिल की गयी थी। इस अनुभव से एम. पी. रोमांचित थे। सन् 1973 में 23 सितम्बर, अजीकूडन राघवन के शहीद दिवस पर 'मार्क्सवाद–एक हस्तपुस्तिका' प्रकाशित की गयी। तीन महीनों के भीतर ही उसकी पांच हजार प्रतियां बिक गयीं। केरल के राजनीतिक कार्यकर्ताओं में विविध विषयों और खासतौर पर मार्क्सवाद को जानने की तीव्र इच्छा थी। मार्च 1975 में पुरावक्ती राजनीतिक कार्यकर्ता बने एम.पी. 1987 तक सी.पी. नारायणन और ई.एम. श्रीधरण के साथ 'चिंता–प्रकाशन' का काम देखते रहे।

कम्युनिस्ट क्यों बने

अक्सर एम.पी. इस प्रश्न से दो–चार होते रहे कि 'बार्क' की अपनी प्रतिष्ठित नौकरी और शानदार कैरियर को छोड़कर उन्होंने एक कम्युनिस्ट बनाना क्यों तय किया? जाहिर ही एम.पी. की आर्थिक या वर्गीय परिस्थितियां तो इसका कारण नहीं थीं। उनके आर्थिक हालात ठीक–ठाक थे। एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार से होने के बावजूद वे थे तो एक परम्परावादी

सामंती नंबूदिरी खानदान से ही। तब भी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति एक हमदर्दी का वातावरण वे अपने परिवेश में पाते थे। उनके पिता कम्युनिस्ट पार्टी को वोट देते थे। पार्टी द्वारा प्रकाशित बहुत–सा कम्युनिस्ट साहित्य उनके घर में था। 1948 में जब पार्टी पर प्रतिबंध लगा था, पिता के कहने पर एम.पी. को ही बहुत सी ऐसी किताबों को जमीन में गहरे दफन करना पड़ा था।

ई.एम.एस. नंबूदिरीपाद की उनके परिवार से करीबी रिश्तेदारी थी ही। जब ई.एम.एस. भूमिगत जीवन जी रहे थे, उन दिनों में एम.पी. ने उन्हें देखा था। अपरिपक्व राजनीतिक समझ वाले एम.पी. जब कक्षा दस में थे, उनके पड़ोसी अच्युत मेनन ने नये–नये बने त्रावणकोर–कोचिन राज्य विधानसभा का चुनाव, उनके इलाके से ही लड़ा और जीता था। एम.पी. की मां खुले दिल–दिमाग वाली सहनशील और दृढ़ महिला थी। अपनी सीमाओं के बावजूद वे रूढ़िभंजक थीं। अत्यंत मेहनती और कुशल थीं। कह सकते हैं कि परिस्थितियों ने उन्हें लड़ना–भिड़ना सिखा दिया था। हालात का असर एम.पी. के मन पर पड़ता गया था।

बचपन में उन्हें धार्मिक संस्कार दिये गये थे। हालांकि समझदार होते–होते उन्हें 'ईश्वर' की कल्पना की जरूरत नहीं रह गयी थी। राजनीति या साम्यवाद से संबंध बनने के पहले ही से वे प्राकृतिक–भौतिकवादी बन चुके थे। त्रिवेंद्रम में इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने के दिनों में उन्हें बेहद सस्ते दामों में 'दास कैपिटल' मिल गयी थी। पढ़ने की सारी कोशिशों के बाद भी जो उस वक्त उनके लिए गूढ़ बनी रही थी। कालांतर में हालांकि, वह बेहद काम आयी।

1962 में हाथ आयी मार्क्सवाद–लेनिनवाद के मूल सिद्धान्तों की एक पुस्तक में उन्हें पदार्थ और देश–काल की भौतिकी के जरिये द्वंद्वात्मक–भौतिकवाद की व्याख्या मिली। जैसी कभी उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी। वह व्याख्या दिलचस्प और तथ्यात्मक थी। इसके बाद से

मार्क्सवाद उनके लिए केवल राजनीतिक दर्शन न रह कर विज्ञान का दर्शन भी बन गया था।

सोवियत–संघ में पढ़ाई के दौरान उन्हें मूल रशियन भाषा में महान लेखकों– टालस्टॉय, दोस्तोवस्की, गोर्की, पुश्किन आदि का साहित्य पढ़ने का अवसर मिला। जिसने उन्हें मानवीयता का पाठ पढ़ाया। क्रांति के बाद आये लेखकों के उपन्यासों से उन्हें समाजवाद हासिल करने के लिए चुकायी गयी कीमत के बारे में पता चला। इन लोगों की प्रतिबद्धता ने एम.पी. को प्रभावित किया। बुद्धि और भावनाओं ने मिलकर उनके दिमागी शब्दकोश से 'त्याग' शब्द को नष्ट कर। उसके एवज में 'अदला–बदली' शब्द रख दिया। ऐसा कुछ, जिससे ज़्यादा खुशी मिल सके, पाने के लिए, ऐसा कुछ जो कम खुशी देता हो, से बदल लो।

ये तमाम बातें, परिस्थितियां और प्रसंग एम.पी. को धीरे–धीरे कम्युनिस्ट बना रहे थे। हालांकि उन्होंने सोवियत संघ में ऐसा भी कुछ देखा था, जो समाजवाद के लिए उपयुक्त नहीं था। वे उससे चिंतित भी थे। वर्षों बाद वे आशंकाएं सच साबित हुईं।

प्रकृति, विज्ञान, समाज

1975 का साल केएसएसपी के लिए परिवर्तनकारी था। जून माह में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने देश में आपातकाल थोप दिया था। वामपंथी राजनीतिक कार्यकर्ता जो गतिविधियां करते आये थे, संभव नहीं रह गयी थीं। अपने समय को वे लोग 'जन विज्ञान आंदोलन' को देने लगे थे।

जनवरी 1976 में होने वाले तेरहवें वार्षिक सम्मेलन की शुरूआत के लिए केएसएसपी ने 3000 स्थानों पर 'प्रकृति, विज्ञान, समाज' पाठ शृखंला चलाने का निर्णय लिया। यह भी तय किया गया कि इसके लिए तीन स्तरों के पाठ तैयार किये जायें। बच्चों के लिए, आम जनता के लिए और विश्वविद्यालयीन स्तर के विद्यार्थियों के लिए।

विश्वविद्यालयीन स्तर के लिए एम.पी. ने पाठ तैयार किया, जो 'शास्त्रगति' के विशेषांक में छापा गया। स्कूली छात्रों के लिए के.के. कृष्णकुमार द्वारा तैयार पाठ 'यूरेका' और एम. स्टीफन द्वारा आम लोगों के लिए तैयार पाठ को 'शास्त्र केरलम्' के विशेषांकों में छापा गया। स्वयंसेवी शिक्षकों के लिए त्रिवेन्द्रम में तीन दिवसीय प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया। जिसमें चार सौ लोग शामिल हुए। निर्धारित 3000 की बजाय महीने भर में कोई 12000 पाठ आयोजित कर लिये गये। इस दौरान केएसएसपी के नेतृत्वकारी साथी भी दूर–दराज के इलाकों में घूमे। जनता से सीधे संवाद करने के दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण अनुभवों ने उन्हें वैचारिक तौर पर और समृद्ध बनाया।

पीची शिविर

'सामाजिक क्रांति' के मायने क्या हैं? 'विज्ञान' क्या है? 'विकास' का क्या मतलब है? 'विकास किसका हो रहा है?' ये तमाम मसले केएसएसपी के साथियों को परेशान किये हुए थे। आधुनिक विकास प्रक्रिया के एक दोष 'प्रदूषण' से केएसएसपी की मुठभेड़ शुरू हो चुकी थी। कोरट्टी में एक कारखाने के नज़दीक के रहवासी शिकायत कर रहे थे कि उनके इलाकों के कुओं का पानी रंगीन हो रहा है। उसका स्वाद बिगड़ रहा है। बीमारियां फैल रही हैं। तथ्यों और कारणों की जांच के लिए केएसएसपी ने कोचीन विश्वविद्यालय के पर्यावरण विज्ञान विभाग के प्रमुख डॉ.सी.टी. सैमुअल के नेतृत्व में एक दल वहां भेजा। शिकायत सही थी। प्रदूषण का कारण वह कारखाना ही था। आवश्यक कदम उठाने के लिए कारखाने के प्रबंधन को तैयार कर पाने में केएसएसपी को सफलता नहीं मिली।

1972 में स्टॉकहोम अधिवेशन हुआ था। कोचीन में पर्यावरणविदों का एक समूह 'कोचीन साइंस सोसायटी' के नाम तले बन चुका था। 1973 में इस सोसायटी ने एक संगोष्ठी कर प्रस्ताव पारित किया। जिसमें प्रदेश सरकार से पर्यावरण रक्षा के लिए कानून बनाने की मांग की गयी थी।

1974 में ही 'केंद्रीय जल प्रदूषण नियंत्रण कानून' प्रभाव में आया था। इन तमाम परिस्थितियों के बीच केएसएसपी ने 'स्वास्थ्य और पर्यावरण बिग्रेड' की स्थापना की। ये बातें पीची शिविर की पृष्ठभूमि में थीं।

'विज्ञान–सामाजिक क्रांति के लिए' का नारा केएसएसपी ने दे दिया था। इसके प्रचार–प्रसार के लिए 'रूरल साइंस फोरम' की कल्पना की गयी थी। इस बाबत विचार–विमर्श चल ही रहा था। तय किया गया कि मिल–बैठकर आत्मविश्लेषण किया जाये। नये सपनों को रूप दिया जाये। 9 से 11 मई 1975 को पीची में एक शिविर आयोजित किया गया, जिसमें केएसएसपी के करीब 30 वरिष्ठ साथी सम्मिलित हुए। उपरोक्त मुद्दों पर गंभीर और व्यापक विचार–मंथन हुआ।

साधारणतः इस बात पर सहमति थी कि 'सामाजिक क्रांति' के लिए पहलकदमी हेतु 'रूरल साइंस फोरम' एक उपयुक्त मंच है। एक मात्र आवाज़ जो इसके विरोध में थी–डॉ. के.जी. आदियोगी की थी। जो केएसएसपी के संस्थापक सचिव थे। उनका मत था कि ऐसे कार्यक्रमों से केएसएसपी एक राजनीतिक भूमिका में आ जायेगी। वे किसी भी तरह राजनीतिक होने के विरुद्ध थे। बाकी लोग उनसे असहमत थे। सभी का मानना था वंचित लोगों के पक्ष में हमें खुलकर खड़ा होना चाहिये। डॉ. आदियोगी ने इस बैठक के बाद केएसएसपी से कोई संबंध नहीं रखे।

उक्त शिविर ने केएसएसपी में नयी ऊर्जा का संचार किया। 'ग्राम–शास्त्र' नाम से एक नये पत्र की शुरूआत का निर्णय लिया गया। जिसका पहला अंक जनवरी, 1977 में प्रकाशित हुआ। यह निर्णय भी लिया गया कि 'स्टेप्स' पर निर्भर रहने की बजाय केएसएसपी को खुद प्रकाशन शुरू कर देना चाहिये।

केएसएसपी के इतिहास में पीची शिविर एक बदलावकारी मोड़ साबित हुआ। इसी में संगठन ने 'उत्पीड़ितों–वंचितों–पीड़ितों' के पक्ष में लड़ने की

प्रतिबद्धता का ऐलान किया। प्रकाशन शुरू करने के निर्णय ने भविष्य में केएसएसपी को आत्म–निर्भर बनाया। इससे कालान्तर में एनजीओ में तब्दील होने की नियती से बचे रहकर, केएसएसपी अपने 'जन विज्ञान आंदोलन' के ढांचे को कायम रख सका। तब तक अपनी गतिविधियां संचालित करने के लिए केएसएसपी, सदस्यों के नियमित चंदे और विशेष अभियानों के दौरान आम जनता से लिये गये आर्थिक सहयोग पर निर्भर करता था। प्रकाशन का पहला प्रयोग था 22 रुपये मूल्य में ग्यारह किताबों की एक 'उपहार–पेटी', जो सफल रहा था।

'रूरल साईंस फोरा' की तर्ज पर 'फैक्ट्री साईंस फोरा' स्थापित करने का विचार चल रहा था। जिसमें सुरक्षा–विधियों और काम–विशेष से होने वाले घातक रोगों आदि पर काम होना था। व्यवस्थित समझ न बन पाने से वह नहीं हो पा रहा था। इन्हीं बहसों से 'स्टार्ट' (स्कूल फॉर आर्टिसंस एंड टेक्निशियन्स) की अवधारणा निकली। इसमें 'हाथ' और 'दिमाग' के बीच के संबंधों को अधिक मजबूत बनाने के उद्देश्य से पारम्परिक दस्तकारों और तकनीशियनों को उनके द्वारा उपयोग में लायी जा रही विधियों में निहित 'विज्ञान' के बारे में जानकारी दी जाना थी। 'इलेक्ट्रिकल वायरमैन' के लिए आयोजित पहले स्कूल की लोकप्रियता अनपेक्षित थी। बाद में ऐसे प्रयोगों को रोक देना पड़ा, क्योंकि खाड़ी के देशों को जाने के इच्छुक लोग 'प्रमाण पत्र' हासिल करने की गरज से इनमें बड़ी संख्या में शामिल होने लगे थे।

निर्माण–मजदूरों, प्रेस में काम करने वालों और मोटर मैकेनिकों के लिए सोची गयी ऐसी कक्षाएं हो ही नहीं पायीं। इन मामलों में जानकार प्रशिक्षक ही केएसएसपी को नहीं मिल पाये। पीची शिविर की सफलता ने ऐसे शिविरों की शृंखला को केएसएसपी के नियमित कार्यक्रमों का हिस्सा बना दिया। 1976 में वजाथोप में हुए दूसरे शिविर में दो महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये (1) केएसएसपी को केरल के संसाधनों का अध्ययन करना चाहिये

और प्रदेश की विकास योजनाओं के निर्माण की प्रक्रिया में शामिल होना चाहिये (2) केएसएसपी को केरल की शिक्षा–नीति को एक स्वरूप देने का काम हाथ में लेना चाहिये।

पहले निर्णय के पालन में 'केरल का धन' किताब को तैयार और प्रकाशित किया गया। प्रदेश योजना आयोग के डॉ. के.एन.श्यामसुंद्रन नायर और थंकप्पन आचारी और 'सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज' के के.पी. कन्नन और डॉ. नारायणन नायर ने इसमें योगदान दिया। समन्वयन और संपादन का काम एम.पी. ने किया। इस किताब का जोरदार स्वागत हुआ। बाद में इसी तर्ज पर 'केरल में कृषि', 'काजू की खेती' आदि किताबों के साथ–साथ प्राथमिक क्षेत्र, आधुनिक–उद्योगों और पारम्परिक उद्योगों पर पुस्तिकाएं छापी गयीं। अन्ततः वर्ष 1988 में 'आठवीं पंच वर्षीय योजना–बहस का एक परिचय' नामक मोनोग्राफ छापा गया।

1976 में कन्नूर में केएसएसपी का तेरहवां वार्षिक सम्मेलन हुआ। इस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका में शिक्षा के बारे में विस्तृत सामग्री दी गयी थी। सम्भवतः यह पहला अवसर था, जब शिक्षा के बारे में केएसएसपी ने एक समग्र दृष्टिकोण बनाने की शुरुआत की थी। यूं तो 1972–73 से ही प्राथमिक विद्यालयों में 'साइंस कार्नर' और उच्चतर विद्यालयों में 'साइंस क्लब' की स्थापनाएं कर शिक्षा के औपचारिक ढांचे में केएसएसपी ने प्रवेश कर लिया था। फिर भी उक्त सम्मेलन में शिक्षा के बारे में ठोस विचार रखे गये थे। हालांकि शिक्षा पर अपना महत्त्वपूर्ण दस्तावेज 'विद्याभ्यास रेखा' को केएसएसपी छः वर्ष बाद उन्नीसवें वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित कर सका।

इसका श्रेय एम.एन. सुब्रह्मण्यम को जाता है। जिन्होंने 'शिक्षा' पर केएसएसपी की नीति बनाने के लिए जोरदार मुहिम छेड़ी। इस तरह शिक्षा–क्षेत्र में केएसएसपी के हस्तक्षेप से शैक्षणिक मार्गदर्शिकाओं, संवर्धन कक्षाओं, विज्ञानोत्सवों, 'विज्ञान के साथ जियो' शिविर, एकीकृत विज्ञान

शिक्षण अनुभवों, कक्षाओं से असाक्षरता को हटाना, शिक्षा जांच आयोग, शिक्षा–आयोग, पाठ्यक्रम शोध, शैक्षणिक शोध इकाई, मुख्यधारा के पाठ्यक्रमों में बदलाव और अंततः शिक्षा में एक सशक्त स्रोत समूह के निर्माण आदि के काम संभव हो सके।

'विज्ञान और संस्कृति' जत्था

केएसएसपी के इतिहास में 1977 एक महत्त्वपूर्ण वर्ष रहा है। इसी वर्ष केएसएसपी ने पहली बार पूरे केरल प्रदेश में 'विज्ञान और संस्कृति' जत्थे का आयोजन किया। एक सुझाव आया कि 'प्रशासन और शिक्षा में मलयालम का उपयोग करो' इस आह्वान के साथ कासरगोड़ा से त्रिवेंद्रम तक एक जत्था निकाला जाये। उन दिनों केरल में इस विषय पर एक बहस चल रही थी।

एम.पी. उन दिनों ऊर्जा के प्रश्नों में रूचि ले रहे थे। तब केरल में तात्कालिक तौर पर बिजली का कोई संकट नहीं था। बल्कि आधिक्य ही था। पर उनके अनुमान अनुसार 1983 तक इसमें कमी आने की आशंका थी। उस वक्त वे इस बात पर सहमत थे कि कोयले का उपयोग करने वाले ताप बिजलीघर ही एकमात्र विकल्प हैं। जैसा कि 'केरल की सम्पत्ति' किताब में इंगित किया गया था। बड़ी मात्रा में कोयले के आयात से उद्योगों का रेला आ जायेगा। एम.पी. ने तर्क रखा कि 'केरल के लिए कोयला आधारित अर्थशास्त्र विकसित करो' इस एकमात्र नारे के साथ जत्था निकालना चाहिये। बाकी साथी इस पर सहमत नहीं थे। सी.पी. नारायणन ने सुझाया कि जत्था अनेक नारे लेकर चले। मसलन 'मलयालम के जरिये शासन और शिक्षा', 'विज्ञान–सामाजिक क्रांति के लिए', 'औद्योगिकरण या नाश' और 'श्रम शक्ति–महानतम संपत्ति' आदि–आदि।

कलाडी में 13–15 मई, 1977 को हुए शिविर में तय हुआ कि जत्था कूवेरी से शुरू होगा। वह गांव जहां 1974 में सबसे पहला 'रूरल साइंस

फोरम' स्थापित किया गया था। जत्थे का समापन त्रिवेंद्रम जिले के पूवाचल गांव में होना था। तब तक उन दोनों गांवों में ही बिजली नहीं पहुंची थी। 2 अक्टूबर–गांधी जयंती से शुरू होकर सात नवम्बर–रूसी क्रांति दिवस के बीच जत्था होना था। बाद में आयोजित होने वाले प्रादेशिक और राष्ट्रीय जत्थों तक के लिए यह कालावधि निर्धारित–सी ही हो गयी। विशाल जन आबादी से इस कदर व्यापक और गहन सम्पर्क करने का यह पहला ही अवसर था। कुछ हजार किलोमीटर की यात्रा में लगभग 900 स्थानों पर कार्यक्रम करते हुए, कोई पचास लाख लोगों से सम्पर्क करते हुए यह जत्था पूरा हुआ था। सी.जी. शांताकुमार उस जत्थे के प्रमुख बनाये गये थे।

इस अनुभव से यह सबक हासिल हुआ कि दुनिया भर में जन–सम्पर्क के जितने भी संभव तरीके हैं, जत्था उनमें से एक महत्त्वपूर्ण तरीका है। इसी अनुभव ने भविष्य की अनेक योजनओं को मूर्त करने में बेहद मदद की। अल्लपुळा में हुए 'विज्ञान और कला' शिविर और 'मे.डे अकादमी' और 'चिंता प्रकाशन' द्वारा आयोजित 'कोरस' नाटकों के अनुभव भी समृद्धशाली रहे।

कला–जत्थों ने तीन महत्त्वपूर्ण काम किये

(1) विज्ञान सम्मत तथ्यों और मानसिकता का प्रसार, खासतौर पर भावनात्मक स्तर पर।

(2) स्थान–स्थान पर स्वागत समितियों के गठन और जत्था–पूर्व कार्यक्रमों के सिलसिले में विविध गतिविधियां चला कर लोगों को संगठित करना।

(3) किताबों की बिक्री का व्यापक अभियान चलाना।

1980 से तो केएसएसपी हर वर्ष जत्थे निकालता है। 1983 में पहली बार केरल की सीमा से बाहर कन्या–कुमारी (तमिलनाडु) तक जत्था गया। 1985 में अखिल भारतीय जत्था और अंततः 1987 में 'भारत जन विज्ञान

जत्था' का आयोजन किया गया। जिससे 'अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क' की स्थापना हुई।

इसी तरह के कला–जत्थों के उपयोग, संपूर्ण साक्षरता अभियान के समय अभूतपूर्व वातावरण निर्माण में कारगर रहे। जिनके दौरान हजारों की संख्या में स्थानीय स्तर की समितियां बनायी जा सकी। जिनसे संपूर्ण साक्षरता अभियान को उल्लेखनीय गति मिली।

बाद के वर्षों में अखिल भारतीय स्तर पर 'भारत ज्ञान विज्ञान जत्था', 'भारत जन ज्ञान विज्ञान जत्था', 'समता–जत्था', 'हमारा देश अभियान जत्था', 'शांति, एकता और संप्रभुता जत्था' आदि के सफल आयोजन हुए। दूर–दूर के इलाकों में विविध मुद्दों पर प्रादेशिक, क्षेत्रीय और जिला स्तरीय जत्थे निकलते रहे हैं। निकल रहे हैं। 1977 में जब पहली बार इस तरह का प्रयोग किया जा रहा था, अनुमान ही नहीं था कि यह भविष्य में क्या कुछ कर दिखाने वाला है। ऐसे जत्थों और केरल के एर्नाकुलम जिले के 'संपूर्ण साक्षरता अभियान' के मिले–जुले अनुभवों से ही देश के स्तर पर 'संपूर्ण साक्षरता आंदोलन' चलाने का हौसला मिला था। जिनसे बारह लाख के करीब स्वयंसेवकों को आंदोलन, जोड़ पाया था। जिन्होंने एक करोड़ से अधिक लोगों को साक्षर बनाने में योगदान दिया।

मे डे अकादमी

1978 में जलंधर में हुई पार्टी कांग्रेस में एम.पी. ने पहली दफा हिस्सेदारी की। वे चिंता प्रकाशन के प्रतिनिधि थे। एक खांटी कम्युनिस्ट कोचानुजा पिशारोडी के साथ वहां प्रकाशनों की प्रदर्शनी लगाने और किताबें बेचने का काम भी उन्होंने किया। कांग्रेस में शिक्षकों, किसानों, लेखकों और कलाकारों की समूह चर्चाएं भी आयोजित की गयी थी। एम.पी. ने विज्ञान के लोकव्यापीकरण पर एक समूह चर्चा का आयोजन किया। 'राजनीतिक रंगमंच' वाली चर्चा में उन्होंने हिस्सेदारी की।

कांग्रेस से लौटते हुए वे केरल में एक राजनीतिक रंग–समूह बनाने की संभावनाओं पर चर्चा करते रहे। कॉमरेड पिशारोडी के पास अनेक

पूर्वानुभव भी थे। 'कम्युनिस्ट डॉक्टर' पी.के.आर.वारियर ने अपने छात्र–जीवन के 'इप्टा' के दौर की यादें सांझा की। कर्नाटक में प्रसन्ना, गुंडप्पा, लक्ष्मी, मालती और अन्य साथियों के ताजा प्रयोग 'समुदाय' का उदाहरण भी उनके सामने था।

शुरुआत के लिए दोनों मित्रों ने लेखकों, कलाकारों और निर्देशकों के दो सप्ताह के एक नाट्य शिविर की योजना बनायी। साथियों की सहायता से 1 से 14 मई तक उक्त शिविर आयोजित किया गया। उसे 'मे डे अकादमी' कहा गया। बैंगलोर से प्रसन्ना और त्रिचुर से प्रोफेसर वी अरविंदाक्षन शिविर के निदेशक थे। उनके साथ ही पी.गोविंदन और कुछ अन्य साथियों ने भी सहभागियों से रंगकर्म और राजनीति के विविध पहलुओं पर बातचीत की। अकादमी का आयोजन सफल रहा। दिवंगत पी.एम.ताज उसी अकादमी की देन थे।

केरल के एक 'जन नाट्य समूह' के गठन का विचार भी उपजा। जिस पर व्यापक सहमति नहीं बन सकी। त्रिवेंद्रम में ही एक समूह बनाने–चलाने के विचार को मान लिया गया। उसे 'कोरस' नाम दिया गया। समूह की पहली प्रस्तुति के लिए नाटक और निर्देशक की समस्या सामने थी। 'मां' नाटक के बारे में सब एकमत थे। तैयारी में तीन माह लगे। वेशभूषा के अलावा अन्य सामग्रियों के लिए भी धन की दरकार थी। चिंता प्रकाशन ने अग्रिम राशि उपलब्ध करायी। एम.पी.उस प्रस्तुति के खर, भिश्ती, पीर, बावर्ची थे।

नाटक का पहला प्रदर्शन कार्तिका तिरुनाल सभागार में हुआ। अमूमन पहले प्रदर्शन में जो कमियां होती है, इसमें भी थी। उत्साहवर्धक समीक्षाएं नहीं हुई। लिहाजा कोई इकाई अपने क्षेत्र में इसका प्रदर्शन करवाने के लिए आगे नहीं आयी। आयोजक और कलाकार अनमने थे। चिंता प्रकाशन इस पर कोई पचास हजार रुपयें खर्च कर चुका था। वह भी लौटाने थे। एम.पी.ने मित्रों, सहयोगियों, रिश्तेदारों से मदद मांगनी शुरु की। केएसएसपी और पार्टी की इकाइयों से गुहार की गयी। कोई तीस

स्थानों पर प्रदर्शन के बुलावे मिले। इस तरह चिंता प्रकाशन का कर्ज़ा चुकाया गया।

पहले प्रयोग के बाद ही 'कोरस' भी खत्म हो गया। हालांकि कला–जत्थे की अभिकल्पना का संभवतः वही आधार था। केएसएसपी को 1977 में विज्ञान–संस्कृति जत्था आयोजित करने का अनुभव था। बाद में केएसएसपी ने अन्पुळा में एक चार दिवसीय शिविर आयोजित किया। जिसमें कला माध्यमों द्वारा विज्ञान प्रसार पर विचार किया गया। तमाम अनुभवों को जोड़ते हुए एम.पी. ने 'शास्त्र कला जत्थे' का प्रस्ताव रखा। मल्लपुरम इकाई ने नयी पटकथाएं लिखने का जिम्मा लिया। कई गीत भी लिखे गये। जो लोगो को आकर्षित करने में सफल रहे।

2 अक्टूबर से 7 नवंबर तक सैतीस दिनों का जत्था कार्यक्रम था। जिसमें प्रति दिन दल को चार और कभी–कभी पांच प्रदर्शन करने होते थे। अलग–अलग स्थानों पर जिन भिन्न विषयों पर संगठन काम कर रहा था, उस अनुसार अलग–अलग प्रस्तुतियां विकसित की गयी थी। जिनमें गीत, एकल नृत्य, नाटिकायें आदि शामिल थे। कई अकादमिक हस्तियां भी इनमें अभिनय कर रही थी। एम.पी. के घर में ही दस दिनों तक इन सबको अंतिम रुप दिया गया।

कालांतर में राष्ट्रीय–स्तर के जत्थे आयोजित करते समय जत्थों के लिए सटीक रास्ते तय करने से लगाकर उनके व्यवस्थित संचालन और नाटकों की तैयारी से लेकर गीतों के चयन आदि में 'मे डे अकादमी' के अनुभव बहुत काम आये।

मनुष्य और पर्यावरण

केएसएसपी के चौदहवें सम्मेलन की शुरुआत प्रख्यात संगीतज्ञ कोवीयुर खेम्मा के एक गीत से हुई। इस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका को पहली दफा एक सुचिंतित किताब 'मनुष्य और पर्यावरण' के शीर्षक से

छापा गया था। जिसमें पर्यावरण को लेकर केएसएसपी की विकसित होती जागरूकता के बारे में व्यवस्थित विवेचन था। पर्यावरण के तीन अंगों– भौतिक–पर्यावरण, जैविक–पर्यावरण और आर्थिक–सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण की अवधारणाओं पर समुचित प्रकाश डाला गया था। इसमें इस धारणा, 'मनुष्य–प्रकृति के रिश्ते को मनुष्य–मनुष्य का रिश्ता शासित करता है, जिसे सांस्कृतिक तत्व मज़बूत बनाते हैं या प्रश्नांकित करते हैं,' का समर्थन किया गया था। इसकी कल्पना इस तरह थी कि मनुष्य–प्रकृति संबंध (विज्ञान और प्रौद्योगिकी) हर भिन्न समाज व्यवस्था मसलन सामंतवाद, पूंजीवाद और समाजवाद में भिन्न होते हैं।

बाद के वर्षों में एम.पी. की धारणा बनी कि जैसे मनुष्य–मनुष्य के संबंध मनुष्य–प्रकृति के संबंधों को प्रभावित करते हैं, इसके उलट प्रक्रिया भी संभव है। मनुष्य–प्रकृति संबंधों के आधार पर सच्ची समाजवादी व्यवस्था नहीं स्थापित की जा सकती, क्योंकि इससे पूंजीवाद के तहत काम करने वाली उत्पादन प्रणाली ही काम कर रही होती है। वैसे ही विशालकाय प्लांट, विराट महानगर, जिनमें निर्णय लेने की व्यवस्था उत्पादन करने वाले कामगारों से उतनी ही दूर होती है। मार्क्सवादी कट्टरपंथी इस विचार से सहमत नहीं होते। उनकी स्थापना होती है कि मनुष्य–मनुष्य का रिश्ता ही केंद्रीय होता है और बाकी उसकी उत्पत्ति होते हैं। यह विवाद अब भी अनसुलझा ही है।

कलाडी में हुए तीसरे शिविर के दौरान एक अप्रत्याशित प्रस्ताव आया। जिसे प्रो.एम.के. प्रसाद ने तैयार किया था। जिसका मुख्य आशय कुछ यूं था– **"उत्साहित केरल सरकार शांत घाटी में एक जल विद्युत परियोजना को शुरू करने जा रही है। पालक्काड जिले की शांत–घाटी के जंगल अपने आप में अनोखे हैं, जहां विशिष्ट जैव–विविधता है। सरकार को यह परियोजना वापस ले लेनी चाहिये।"** वहां उपस्थित लगभग सभी लोग पारिस्थितिकी से अनभिज्ञ

थे। पी.टी.बी. ने प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया। वहां मौजूद अधिकतर लोगों ने महसूस किया कि प्रस्ताव में कुछ वजन तो है। बहस अलसुबह तक चलती रही। अन्ततः एम.के.पी., एम.पी., वी.के.डी., के.पी. कन्नन और के.एन. श्यामसुंदरन, इन पांच लोगों की एक समिति गठित की गयी। जिसने 1979 में अपनी रिपोर्ट दी। इसी बीच केएसएसपी ने एक प्रस्ताव पारित कर केरल सरकार से अनुरोध किया कि जब तक शांत घाटी की जैविक और वानस्पतिक समृद्धता का व्यापक अध्ययन नहीं हो जाता, ऐसा कोई कदम न उठाया जाये जिसे वापस लेना संभव न हो अथवा जब यह परियोजना ही अंतिम उपाय न रह जाये।

इसके बाद के वर्षों में केरल, विकासवादी कट्टरपंथियों और शुद्ध पर्यावरणवादियों के बीच चली कड़वी बहस का गवाह बना। कट्टरपंथी पर्यावरणवादियों की तीसरी श्रेणी कुछ समय बाद सामने आयी। इस मसले पर कोई चार वर्षों तक चले वाद–विवाद ने निर्णायक काम किया। केएसएसपी ने 1973 से ही पर्यावरणीय मुद्दों पर काम करना शुरू कर दिया था, वह पारिस्थितिकी के इस मुद्दे पर कारगर हस्तक्षेप कर सका।

विकास से संबंधित पर्यावरण के मुद्दों में रूचि लेने के चलते केएसएसपी के लिए स्वाभाविक था कि बड़े पैमाने पर चलायी जाने वाली कुट्टनाड विकास योजना, जिसमें थन्नीर मुखम बांध बनाना शामिल था, के पारिस्थितिक–आर्थिक प्रभाव के अध्ययन को वह हाथ में ले। 10–12 फरवरी, 1978 को हुए केएसएसपी के पन्द्रहवें वार्षिक सम्मेलन के एक विषेश सत्र में के.पी. कन्नन, के.एन.एस. नायर और अन्य लोगों द्वारा तैयार कुट्टनाड रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। सम्मेलन की स्मारिका 'जनता के लिए उपयोगी प्रौद्योगिकी' पर केंद्रित थी।

'जन विज्ञान आंदोलन' का पहला अधिवेशन

केरल के बाहर भी केएसएसपी के संपर्क बढ़ रहे थे। इसके ग्यारहवें वार्षिक सम्मेलन से ही प्रदेश के बाहर के प्रतिनिधियों का शामिल होना

शुरू हो गया था। पन्द्रहवें वार्षिक सम्मेलन में भी ऐसे अनेक प्रतिनिधि आने थे। कुछ ही पहले डॉ. के.एन. राज ने के.पी. कन्नन को 'इकॉनामिक एंड पॉलीटिकल वीकली' में केएसएसपी के बारे में एक लेख लिखने के लिए तैयार किया था। इससे कुछ अन्य संगठनों ने केएसएसपी से संपर्क बनाने शुरू किये। केएसएसपी के भीतर भी यह विचार चल पड़ा था कि समान सोच वाले संगठनों के साथ भी कोई सम्मेलन किया जाना चाहिये।

राज्य योजना आयोग के साथ भी केएसएसपी के संबंध मजबूत हो रहे थे। आयोग के तत्कालीन सचिव डॉ.पी.के. गोपालकृष्णन भी इस बारे में अत्यंत उत्साहित थे। ऐसे सम्मेलन के लिए यथासंभव सहायता के लिए वे तत्पर थे। 'सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज़' के डॉ. के.एन. राज भी मदद के लिए तैयार थे। प्रश्न उठा ऐसे किसी सम्मेलन का नाम क्या होगा? 'समान सोच' का अर्थ क्या होगा? स्पष्ट मत था कि ऐसे संगठन जो वंचितों के पक्षधर हों। जो वंचितों के पक्ष में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का रचनात्मक उपयोग करते हों। ऐसे सभी संगठनों के लिए के.पी. कन्नन ने एक नाम सुझाया– जन विज्ञान आंदोलन।

पहला अखिल भारतीय जन विज्ञान आंदोलन अधिवेशन अपार सफल हुआ। 10–12 नवंबर, 1978 को हुए उस त्रिदिवसीय अधिवेशन में हिस्सेदारी के लिए तीस से अधिक समूहों के करीब डेढ़ सौ सदस्य आये। औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, मूलभूत जरूरतों के कार्यों पर जोर, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता आदि मुख्य मुद्दे थे, जिन पर अधिवेशन में विस्तार से चर्चा हुई। सबसे गर्मागर्म चर्चा 'विकास' के मसले पर हुई।

यद्यपि आज यह कहा जाता है कि केएसएसपी के पास एक स्पष्ट सामाजिक मकसद हैः सामाजिक बदलाव के लिए जरूरी वातावरण बनाने के लिए सतर्कतापूर्वक विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग। विचारधारा को लेकर यह संगठन, अपने भीतर तीक्ष्णता की कमी महसूस करता था। थावानुर में हुए पांचवें शिविर से संगठन के भीतर विचारधारात्मक चिंतन

पर एक बहस चलायी गयी। दिलचस्प है कि इतने वर्षों बाद भी यह संगठन विचारधारा को लेकर सतत् वाद–विवाद करता रहता है। यह एक सकारात्मक पक्ष है। जो साबित करता है कि संगठन के लोग विचार धारात्मक स्तर पर जड़ नहीं हुए हैं। हालांकि पूर्वी–यूरोप में समाजवाद के पराभव और चीन में चल रहे आर्थिक प्रयोगों ने बहुत से विचाराधारात्मक झटके पहुंचाये हैं। इससे विचारधारा को लेकर होने वाली चर्चाएं कुछ क्षीण हुई हैं।

1978 में आपातकाल की समाप्ति के बाद जनता पार्टी का शासन आया। तब तक देश के समस्त बच्चों को सन् 1965 तक 'मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा' उपलब्ध कराने के अपने संवैधानिक दायित्व के बारे में देश की सरकारों ने कुछ खास विचार नहीं किया था। देश में असाक्षर आबादी बढ़ गयी थी। जिसे खत्म करना सरकार के लिए ज़रूरी था।

आम लोगों की शिक्षा के लिए केएसएसपी के सारे प्रयास मुद्रित माध्यमों के जरिये ही होते थे। आबादी का बड़ा हिस्सा जो असाक्षर था, जाहिर ही ऐसी कोशिशों से बाहर छूट जाता था। 1988 में मल्लपुळा में हुए कार्यकर्ताओं के शिविर में पहली बार साक्षरता संबंधी गतिविधियों के लिए एक अलग समिति का गठन किया गया। ओ.आर. रमन को उसका समन्वयक बनाया गया। 1978 में उक्त समिति ने एक परियोजना रिपोर्ट पेश की, जिसमें आने वाले पांच वर्षों में केरल को शत–प्रतिशत साक्षर बना देने का संकल्प था।

तब तक अनेक 'रूरल साइंस फोरा' बन चुके थे। अनेक स्थानों पर ये मंच साक्षरता की कक्षाएं भी संचालित करते थे। पर किसी तरह के सिलसिलेवार अभियान को बनाने, चलाने में वे प्रयास सफल नहीं हो पाये थे। इसी बीच केंद्र सरकार ने 'राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम' की घोषणा कर दी थी। केरल में इस काम के लिए बनायी गयी प्रादेशिक समिति में केएसएसपी का प्रतिनिधित्व सी.पी. नारायणन ने किया था। उक्त कार्यक्रम

'केंद्र आधारित' ढांचे पर बनाया गया था। जिसमें एक–एक केंद्र पर दस महीनों तक तीस असाक्षर लोगों को पढ़ाया जाना था। जिसके लिए एक कार्यकर्ता को रु. पचहत्तर मासिक के मानदेय का प्रावधान था। केरल में ग्रामीण विकास विभाग के माध्यम से यह कार्यक्रम संचालित किया जा रहा था। सरकारी प्रयासों के अलावा अनेक स्थानों पर गैर सरकारी संगठनों को भी केंद्र चलाने का अवसर दिया गया था। स्वाभाविक ही केएसएसपी ने भी कुछ स्थानों पर ऐसे केंद्र शुरू किये थे।

यह स्पष्ट होते देर न लगी कि सरकारी, हो चाहे गैर सरकारी अधिकतर केंद्र, कागजों पर ही थे। जो धन इस हेतु आ रहा था, 'ठिकाने' लगा दिया जा रहा था। स्थिति का लाभ लेने के लिए अनेक गैर सरकारी संगठन बन गये थे। ऐसे समूहों की पंक्ति में खड़े होना केएसएसपी के लिए मुनासिब न था।

वर्ष 1978 में प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय द्वारा आयोजित एक बैठक में हिस्सेदारी करने एम.पी. दिल्ली आये। तब डॉ. जलालुद्दीन उसके निदेशक थे। विचारधारात्मक स्तर पर एक ही दिशा होने के कारण उन दोनों में मित्रता बढ़ी। अनिल बोर्डिया केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय में संयुक्त सचिव थे। उन्हीं के पास प्रौढ़ शिक्षा की जिम्मेदारी भी थी। एम.पी. ने उनसे मुलाकात कर अपनी चिंताएं जाहिर की। श्री बोर्डिया न केवल केएसएसपी के कामों से प्रभावित थे, बल्कि राजस्थान के अखबारों में इस संगठन के बारे में लिख भी चुके थे। उन्होंने शीघ्र ही उपयुक्त कार्रवाई करने का आश्वासन दिया। तात्कालिक तौर पर केएसएसपी के पास प्रौढ़ शिक्षा के उस कार्यक्रम से हट जाने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था। वह अनुभव अलबत्ता बाद के वर्षों में बड़ा काम आया।

वर्षों बाद, 1986 में एर्नाकुलम में सम्पन्न केएसएसपी के तेइसवें वार्षिक सम्मेलन में प्रस्ताव पारित किया गया कि आगामी पांच वर्षों में केरल को संपूर्ण साक्षर प्रदेश बनाया जाये। प्रो.एम.के. प्रसाद की अगुवाई में बकायदा

एक 'केरल साक्षरता सेना' गठित की गयी। असाक्षरता के खिलाफ लड़ने के लिए फील्ड मार्शल, मेजर जनरल, बिग्रेडियर, प्लाटून कमांडर और लड़ाकू इकाइयों का गठन किया गया। एक परियोजना प्रस्ताव तैयार किया गया। तब तक नईदिल्ली का शिक्षा मंत्रालय इस पैमाने पर कार्रवाई के लिए तत्पर नहीं था। इन प्रयासों से यह जरूर हुआ कि केएसएसपी के संकल्पानुसार आगामी पांच वर्षों में केरल एक संपूर्ण साक्षर प्रदेश बना। 18 अप्रैल 1991 को उसे भारत में पहले संपूर्ण साक्षर राज्य का दर्जा दिया गया।

एर्नाकुलम में संपूर्ण साक्षरता अभियान

श्री के.आर. राजन एर्नाकुलम में जिलाधीश थे। आई.ए.एस. बनने से पहले वे केएसएसपी से जुड़े रहे थे। के.के. कृष्णकुमार ने उन्हें सुझाव दिया कि वे एर्नाकुलम जिले को पूर्ण साक्षर बनाने की परियोजना शुरू करें। मदद के लिए उन्होंने एम.पी. से मिलने का सुझाव दिया। राजन ने त्रिवेंद्रम जाकर एम.पी. से मुलाकात कर संभावित योजना पर विस्तार से चर्चा की। राजन जानते थे कि सिर्फ प्रशासनिक अमले के भरोसे इस महत्तर काम को नहीं किया जा सकता। केएसएसपी अकेले दम भी इसे अंजाम नहीं दे सकती थी। लिहाजा एक 'सहजीवन' की तलाश की गयी।

केन्द्र सरकार से सीधे–सीधे किसी जिले को कोई मदद नहीं मिल सकती थी। इस कारण केएसएसपी को योजना प्रस्तुत कर उसकी जिम्मेदारी लेनी होती। ऐसी जिम्मेदारी स्वीकार करने में केएसएसपी में एक हिचकिचाहट थी। वैचारिक समस्याएं भी थीं। क्या ये हमारा काम है? कई सदस्यों का तर्क था कि ऐसी हमारा संगठन GONGO- सरकारी एन.जी.ओ. अथवा DENGO- विकासात्मक एन.जी.ओ. न बन जाये।

एम.पी. को उन सबके सामने कठोर शब्दों में कहना पड़ा था– 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन और प्रादेशिक प्रशासन हमें यह चुनौती दे रहे हैं और मदद का आश्वासन भी। यदि केएसएसपी इस चुनौती को स्वीकार नहीं करती

है, तो इस मामले में सरकार की आलोचना करने का नैतिक आधार खो देती है। ऐसे में काम को आगे बढ़ाने के लिए जिलाधीश नये एनजीओ की स्थापना कर सकता है। दूसरे प्रदेशों में ऐसा होता रहा है। जहां जिलाधीश को जिला साक्षरता समिति का प्रमुख बनाया जाता है।' आखिर केएसएसपी की कार्यकारिणी मान गयी।

ऐसे शुरू हुआ एर्नाकुलम का संपूर्ण साक्षरता अभियान, जिसे एर्नाकुलम 'मॉडल' नाम से जाना गया। अभियान के समृद्ध अनुभवों को बयान करने के लिए तो कई पन्नों की जरूरत होगी। यहां यह कहना पर्याप्त होगा कि समाज से परोपकार की भावना नष्ट हो चुकी है, संगठन को स्वयंसेवक मिलने में समस्या आयेगी, यह धारणा गलत साबित हुई। जिले में असाक्षरों को पढ़ाने के लिए कोई तेईस हजार कार्यकर्ता आगे आये। उस 'मॉडल' की सफलता के बाद उसे पूरे प्रदेश में लागू किया गया तो लगभग ढाई लाख कार्यकर्ता आगे आये। देश के स्तर पर संपूर्ण साक्षरता अभियान चलाते समय बारह लाख कार्यकर्ता निकल कर आये।

अभियान से यह भी स्पष्ट हुआ कि गंभीर कोशिशों से प्रशासनिक अमले और जन संगठनों के बीच बेहतर समन्वय संभव है। उससे प्रभावी परिणाम पाये जा सकते हैं। यह उल्लेख दिलचस्प होगा कि संपूर्ण साक्षरता अभियान के लिए जो ऑफिस एर्नाकुलम में बनाया गया था, उद्घाटन के दिन से ही उसके दरवाजे का ताला हटा दिया गया था। अभियान पूरा होने के बाद ही वह दरवाजे पर फिर से लटक पाया। चौबिसों घंटों काम करने का जुनून सरकारी अमले में भी था। प्रशासन और जनता के बीच की खाई को एक हद तक पाटने में यह अभियान सफल रहा था।

भारत जन विज्ञान जत्था

3 दिसंबर 1984 को भोपाल में हुई भीषण मानव जनित औद्योगिक त्रासदी से 'जन विज्ञान आंदोलन' के कार्यकर्ता सकते में थे। आंदोलन का

मत था कि यह जनविज्ञानियों के लिए एक चिंतनीय मुद्दा होना चाहिये। केएसएसपी ने तब, पहली बार एक अखिल भारतीय जत्था निकाला था। जिसमें केरल के अलावा तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और मध्यप्रदेश के साथियों ने भी हिस्सेदारी की थी।

उस जत्थे की सफलता ने इस दिशा में और बड़े कदम उठाने के लिए 'जन विज्ञान आंदोलन' को उत्साहित किया था। 1985–86 के दौरान विविध संगोष्ठियों में हिस्सेदारी करने के कारण एम.पी. को देश के लगभग सारे प्रदेशों में जाने के अवसर मिले। उन प्रदेशों में कार्यरत संगठनों और विज्ञान आंदोलनकारियों से चर्चा कर वे आंदोलन को फैलाने और देश व्यापी गतिविधियों के लिए संभावित साथियों को तलाशते थे। राष्ट्रीय स्तर पर एक विज्ञान जत्था निकालने की एक योजना उनके दिमाग में आकार ले रही थी।

'नेशनल कौंसिल फॉर साईंस एंड टेक्नोलॉजी कम्युनिकेशन' (एनसीएसटीसी) के एजेंडे में भी विज्ञान के लोकव्यापीकरण का काम सर्वोपरि था। तमाम जन विज्ञान संगठनों की तरफ से 'देहली साईंस फोरम' ने 1987 की शुरूआत में एनसीएसटीसी को एक प्रस्ताव भेजा। संचालन समिति गठित की गयी। डॉ.बी.एम.उदगावकर को अध्यक्ष, एम.पी. को महासचिव और डी. रघुनंदन को सांगठनिक सचिव बनाया गया। फरवरी 1988 में केरल के कन्नुर में हुई पहली अखिल भारतीय जन विज्ञान कांग्रेस में इसे एक औपचारिक संगठन–अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क में परिवर्तित किया गया।

अखिल भारतीय जत्थे के लिए केएसएसपी ने नेतृत्व संभाला। त्रिवेंद्रम में महीने भर का शिविर आयोजित किया गया। नाट्य लेखन, अनुवाद, निर्माण सब कुछ साथ–साथ चल रहा था। के.के. शिविर निदेशक थे। केएसएसपी की कुछ पुरानी प्रस्तुतियों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद और निर्माण किया गया। खासतौर पर ब्रेख़्त का एक गीत। जो पढ़ने की महिमा

बयान करता है। उसका तो जादू ही चल गया था। अनेक भारतीय भाषाओं में वह गीत गाया गया। बाद में तो वह साक्षरता अभियान का शीर्षक गीत जैसा ही बन गया। गोर्की के उपन्यास 'मां' के नाट्यरूप में ब्रेख़्त ने उसका प्रयोग किया था। मानव इतिहास पर 'एकलव्य का अंगूठा', श्रम पर 'एक प्रश्न' और शांति पर 'हिरोशिमा' आदि अन्य प्रस्तुतियां थीं। जत्थे को व्यापक प्रचार मिला। कुल पांच दल थे। जिन्हें दक्षिण में चेन्नई, पश्चिम में शोलापुर, उत्तर में जम्मू, पूर्व में मालदा और उत्तर–पूर्व में गुवाहाटी से चलकर 6–7 नवंबर तक भोपाल में आ मिलना था।

2 अक्टूबर, गांधी–जयंती को ये जत्थे अपने–अपने स्थानों से चले। समापन दिवस 7 नवंबर का भी विशिष्ट महत्व था। यह विख्यात वैज्ञानिक डॉ. सी.वी. रमन का जन्मदिन है और आधुनिक समय की सर्वाधिक बदलावकारी घटना रूसी क्रांति की वर्षगांठ भी। प्रत्येक जत्थे के लिए अनुभवी प्रबंधक और कुछ प्रशिक्षित कलाकार भी केएसएसपी ने उपलब्ध कराये। समापन समारोह में केरल से अधिक से अधिक साथियों को लाने के लिए केएसएसपी ने एक पूरी ट्रेन ही किराये पर ले ली थी। जिसमें तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश से भी कुछ साथी आये थे। 4 नवंबर को इस 'विज्ञान–ट्रेन' को त्रिवेंद्रम में केरल के तत्कालिक मुख्यमंत्री इ.के. नयनार ने हरी झंडी दिखाकर रवाना किया। एम.पी. उस के मुखिया थे।

समापन कार्यक्रम में केरल से आये सात सौ से अधिक साथी शामिल हुए। आज़ादी की लड़ाई के प्रतीक रूप में सभी ने सफेद खादी के कपड़े पहन रखे थे। अपार भीड़ थी। वह एक रोमांचकारी अनुभव साबित हुआ। उत्साहित साथियों ने कार्यक्रम के अगुवा एम.पी. को कंधे पर उठा लिया और झूमने लगे।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति का उद्भव

एम.पी. जब त्रिवेंद्रम में ही रहते थे, तब मार्च 1988 में एक दिन उन्हें त्रिवेंद्रम के टेलीफोन महाप्रबंधक ने फोन कर बताया कि श्री सैम पित्रोदा त्रिवेंद्रम आ रहे हैं और वे एम.पी. से मिलना चाहते थे। एम.पी. समझने में असफल थे कि आखिर माज़रा क्या है। सैम पित्रोदा से एम.पी. की कोई जान–पहचान न थी। इतना भर पता था कि वे प्रधानमंत्री राजीव गांधी के प्रौद्योगिकी सलाहकार हैं। केंद्र–सरकार की मदद के लिए अमेरिका से बुलाये गये हैं। देश में संचार क्रांति लाने के लिए स्थापित टेलीकॉम मिशन की देख–रेख कर रहे थे। अमेरिका से आये हैं, यह जानकर एम.पी. उनके प्रति शंकित थे। उनकी धारणा थी कि देश के जिन करोड़ों वंचितों के लिए 'जन विज्ञान आंदोलन' काम कर रहा है, यह व्यक्ति उसके पक्ष में कुछ नहीं करेगा। कुछ महीनों बाद, हालांकि वह धारणा गलत साबित हुई। एम.पी. ने पित्रोदा से मुलाकात की। बैठक में जयराम रमेश भी शामिल थे। बाद में केंद्रीय मंत्री बने जयराम रमेश तब पित्रोदा के विशेष–सहायक थे।

पित्रोदा जानने को उत्सुक थे कि केंद्र सरकार द्वारा जल्द ही स्थापित किये जाने वाले साक्षरता मिशन को केएसएसपी क्या सहायता दे सकता है? खास तौर पर उत्तरी आंध्रप्रदेश और उड़ीसा के घने और दूरस्थ क्षेत्रों में? एम.पी. का जवाब था कि सिद्धांततः ऐसी किसी भी पहल–कदमी पर सहयोग का हाथ बढ़ाने में केएसएसपी को खुशी होगी। पित्रोदा ने उन्हें दिल्ली आने और विस्तार से बातचीत का न्यौता दिया। एम.पी. दिल्ली गये। एक गहन और सिलसिलेवार चर्चा के बाद तय हो गया कि सम्भावित मिशन में 'जन विज्ञान आंदोलन' की एक महत्वपूर्ण भूमिका होने जा रही है।

अनुभवों के आधार पर एम.पी. का मानना था कि इस लक्ष्य को पा लेने के लिए राजनीतिक इच्छा शक्ति चाहिये। पित्रोदा ने आश्वस्त किया कि सरकार के पास वह इच्छा है। प्रधानमंत्री खुद ऐसा चाहते हैं। एम.पी. का

मत था कि जनता को सरकार पर भरोसा नहीं है, प्रधानमंत्री को दृढ़ता दिखानी होगी।

पित्रोदा के सुझावानुसार एम.पी. ने साक्षरता कार्यक्रम के प्रभारी लक्ष्मी धर मिश्रा और अनिल सिन्हा से भेंट की। शिक्षा सचिव अनिल बोर्डिया से एम.पी. का पूर्व परिचय था। उन्होंने मिशन द्वारा साक्षरता कार्यक्रम पर तैयार किये गये दस्तावेज एम.पी. को दे उस पर केएसएसपी के विचार जानना चाहे। यह अनुरोध भी किया कि यदि केएसएसपी उनमें कोई परिवर्तन चाहे तो बदलाव करने में विभाग हिचकिचायेगा नहीं। बाकी मिशनों की तर्ज पर उक्त मिशन का नामकरण किया गया था– टेक्नोलॉजी मिशन फॉर इरेडिकेशन ऑफ इल्लिट्रेसी। एम.पी. को इस नाम में ही एक किसम की कर्कशता महसूस हुई। उनका विचार था कि साक्षरता, कोई प्रौद्योगिकी का मसला नहीं है, इसे एक सामाजिक अभियान बनाना चाहिये। अलावा नाम के, दस्तावेज बेहतरीन था। बाद में मिशन को 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' नाम दिया गया।

मई 1988 में इसकी औपचारिक शुरूआत हुई। एम.पी. को उसकी 'काउंसिल' और कार्यकारिणी का सदस्य बनाया गया। काउंसिल की पहली बैठक में सदस्यों के आग्रह कि केएसएसपी को किसी सुझाव के साथ आगे आना चाहिये, एम.पी. ने प्रस्ताव रखा कि– पांच जत्थों की बस–यात्राओं के 'भारत जन विज्ञान जत्था' के अनुभवों के आधार पर साक्षरता और विज्ञान के रेल–जत्थों पर सोचा जाना चाहिये। इन मुद्दों को लेकर चारों दिशाओं से चार रेलें चले। तीन महीनों तक देश भर की यात्रा करें।

संसाधनों की व्यवस्था सरकार द्वारा किये जाने का आश्वासन देते हुए सैम पित्रोदा ने विस्तृत योजना बनाने का आग्रह किया। शुरूआत में चार रेल–जत्थों की कल्पना की गयी थी। दो उत्तर–दक्षिण जत्थे और दो पूर्व–पश्चिम जत्थे। प्रत्येक बड़ी और छोटी लाइनों पर एक–एक रेल

चले। उनके लिए गांधी, टैगोर, भगतसिंह और सुब्रम्हण्यम भारती आदि नाम सोचे गये थे। अलबत्ता जल्दी ही यह एहसास हो गया कि मीडिया–प्रचार में चाहे रेल–जत्थे आकर्षक लगें, गांवों तक उनकी पहुंच संभव नहीं हैं।

डॉ. सुंदर रमन ने विस्तृत और सटीक योजना बनाने में एम.पी. की मदद की। जिला स्तरों पर चार सौ जत्थें आयोजित करने का लक्ष्य रखा गया। जिले में 37 दिनों तक घूमते हुए, हर जत्था इलाके के सौ प्रमुख गांवों तक पहुंचें और स्थानीय तथा आस–पास की जनता से संपर्क करे।

परियोजना के गुण–दोषों पर चर्चा के लिए अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क की एक बैठक पांडिचेरी में आयोजित की गयी। परियोजना का आकार–प्रकार विशाल था। उससे डर कर कुछ सदस्य अलग हो गये। कुछ सदस्यों ने साक्षरता को लेकर तात्विक प्रश्न उठाये– उपयोग में लायी जाने वाली पाठ्य–पुस्तकों पर 'जन विज्ञान आंदोलन' का क्या नियंत्रण होगा? इस बात की क्या गारंटी होगी कि कट्टर और साम्रायवादी ताकतें अपने हितों के लिए साक्षरता का उपयोग नहीं करेंगी? अधिकतर सदस्य दक्षिणी राज्यों और बंगाल तक सीमित एक अभियान के पक्ष में थे, पर वैसा करना हास्यास्पद होता। साक्षरता अभियान की दरअसल जरूरत तो उत्तरी–भारत में थी। हालात से निपटने और स्थानीय लोगों के आत्म–विश्वास को संबल देने के लिए एम.पी. ने कई प्रदेशों की यात्राएं की। उस कठिन परिस्थिति में वरिष्ठ वाम नेता बी.टी. रणदिवे ने एम.पी. की निर्णायक मदद की। वे मानते थे कि केरल और बंगाल तैयार हैं, तो आगे बढ़ो। यथासंभव उत्तरी भारत को शामिल करो। साक्षरता का वस्तु–तत्व क्या होगा, उसकी चिंता मत करो। साक्षरता, अपने आप में ही एक क्रांतिकारी काम है।

भारत ज्ञान विज्ञान जत्था

देश भर में साक्षरता की मांग पैदा करने और अभियान के लिए संस्थानों का हौसला बढ़ाने के लिए जन विज्ञान आंदोलन के संस्थानीकरण की आवश्यकता थी। एआईपीएसएन पंजीकृत नहीं था। कोई एक प्रादेशिक संगठन इस विशाल परियोजना के लिए उपयुक्त न होता। एक नये और पंजीकृत संगठन का बनाना अपरिहार्य था। जिसमें पूर्णकालिक कार्यकर्ता हों। जत्थे को एक प्रासंगिक नाम देना था। एम.पी. का सुझाव था जत्थे को 'भारत ज्ञान विज्ञान जत्था' कहा जाये। प्रस्तावित संगठन का नामकरण किया जाये– भारत ज्ञान विज्ञान समिति। दोनों सुझाव मान लिये गये। 'जन' की बजाय 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग निश्चित उद्देश्य से किया गया था। 'ज्ञान' यानी विवेक। जिसके बिना 'विज्ञान' विनाशक हो जाता है। 'अक्षर' विवेक का प्रतीक है। इस तरह अवधारणा के स्तर पर 'ज्ञान विज्ञान आंदोलन', जन विज्ञान आंदोलन का अगला चरण है।

राष्ट्रीय स्तर पर जत्थे के आयोजन को लेकर एआईपीएसएन के कुछ सदस्यों की प्रारंभिक हिचकिचाहट के बाद तय हुआ कि अनेक प्रदेशों में संबंधित गतिविधियां आयोजित करने के लिए नेटवर्क के बाहर के संगठनों पर निर्भर होना पड़ेगा। खासतौर पर हिंदी भाषी प्रदेशों में। पांडिचेरी में जुलाई 1–2, 1989 को हुई एआईपीएसएन की बैठक में अनेक मुद्दों पर समझदारी बनी। जैसे–

- साक्षरता के मसले पर भारत ज्ञान विज्ञान जत्था क्या हासिल करेगा? अनुवर्ती कार्रवाइयां क्या होंगी?
- क्या एआईपीएसएन इस तरह के जन अभियान के लिए एक समुचित मंच है?
- भारत ज्ञान विज्ञान जत्था' से एआईपीएसएन के सदस्य संगठन क्या पायेंगे या खोयेंगे?

भारत ज्ञान विज्ञान समिति और साक्षरता

- सार्वभौम साक्षरता के मुद्दे पर देश की तमाम, लोकतांत्रिक ताकतों को यह जत्था एक धारा में जोड़ने की कोशिश करेगा।
- जनता और लोकतांत्रिक संस्थाओं और संगठनों को इस मुद्दे पर जागरूक किये जाने का काम यह जत्था करेगा। ताकि सभी के एजेंडे पर यह प्रमुखता पा सके। यह इस कदर प्रासंगिक मसला है, जिसे सरकार और जनता को अपने सामाजिक, राजनैतिक प्राथमिकताओं में महत्व के साथ शामिल करना चाहिये।
- यह जत्था सीधे पढ़ाने का काम नहीं करेगा। यह स्पष्ट था कि पढ़ाने की गतिविधि अनुवर्ती काम होगा। उसमें जहां, जैसी ठोस मदद संभव होगी, बीजीवीएस करेगा।
- यह भी साफ था कि सरकार और स्वयंसेवी प्रयासों के बिखरे हुए केंद्रों वाली परियोजना से पिछले चालीस वर्षों से कुछ भी हासिल नहीं किया जा सका था। देश में असाक्षरों की संख्या बढ़ी ही थी। इसलिए यह भी स्पष्ट ही था कि 'असाक्षरता' के उन्मूलन के लिए एक समग्र और समावेशी राष्ट्रीय अभियान जरूरी है। अभियान से देश और समाज को होने वाले लाभ की महत्ता में सबका भरोसा होना जरूरी था। इसीलिए इसमें केंद्र और राज्य की सरकारों से लेकर स्थानीय शासन के सारे उपक्रमों, सरकारी विभागों, प्राथमिक–विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक के शिक्षण संस्थानों, तमाम तरह के सामाजिक संगठनों और संस्थानों के साथ–साथ देश के पढ़े–लिखे नागरिकों तक की व्यापक भागीदारी जरूरी थी। जरा भी कम कोशिश से उद्देश्य हासिल करना संभव न था। 1966 में शिक्षा के मसले पर गठित कोठारी आयोग की रिपोर्ट भी कहती थी कि चयनात्मक पहुंच में निहित सीमाओं के चलते वह तरीका समग्र निदान पाने में कारगर नहीं होता, जबकि लक्ष्य पाने के लिए जन–अभियान सचमुच कारगर हो सकता है।

- एर्नाकुलम के साक्षरता अभियान में जिला स्तर पर ऐसे अभियान का एक कारगर मॉडल सामने था। उस वक्त केरल और केंद्र शासित पांडीचेरी में भी जन–अभियान जारी थे। तमिलनाडु, कर्नाटक, हरियाणा, पश्चिम बंगाल और गुजरात के कुछ जिलों में परियोजनाएं चलाने की कोशिशें हो रही थीं।
- एर्नाकुलम मॉडल का महत्वपूर्ण हिस्सा था, 15 से 45 वर्ष के आयु समूह के बीच असाक्षरों की खोज के लिए एक विशेष जनगणना आयोजित करना। दस असाक्षरों को साक्षर करने के लिए एक स्वयंसेवी कार्यकर्ता तैयार करना। असाक्षरता से लड़ने के लिए एक स्वयंसेवी सेना तैयार करना।
- सीखने और सिखाने वालों को प्रेरित और उत्साहित करने के लिए वातावरण निर्माण करना। अभियान के केंद्र में जत्था था। तमाम स्तरों पर जन समितियां गठित की गयी थीं। कोई नौ महीनों तक सांगठनिक तैयारियों और प्रेरणा अभियानों को पूरा कर लेने पर, तमाम प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित कर, आने वाले छः माहों में दो लाख के करीब असाक्षरों को पढ़ाने के लिए लगभग बीस हजार स्वयंसेवी मैदान में आ गये थे। वह एक प्रेरक अनुभव था।
- भारत ज्ञान विज्ञान जत्थे के सांगठनिक प्रयासों और निर्णायक उपलब्धियों के रूप में जिला स्तरीय संपूर्ण साक्षरता योजनाओं को तैयार किया जाना था। जिसमें साक्षरता दूतों और जिला समितियों से चर्चा करना और साक्षरता अभियान के लिए एक बुनियादी गाइड उपलब्ध कराना शामिल था।
- प्रत्येक प्रदेश में कम से कम एक और कहीं–कहीं एक से अधिक जिलों में 'जत्था' ऐसे साक्षरता–अभियान करने में सक्षम था। यह राष्ट्रव्यापी जत्थे का अगला चरण था। जिसमें जत्थे के बाद मिली प्रतिक्रियाओं के वास्तविक मूल्यांकन के आधार पर जिले का चयन और अभियान के लिए जरूरी मानव शक्ति का आंकलन संभव था।

- दूसरे चरण में देश भर के अनेक जिलों में एक साथ साक्षरता अभियान चलाने से 'असाक्षरता' खत्म कर देने के इरादों को यथार्थ में उतारने की योजना बनाना संभव था।

- यह कहना कि यही मॉडल उपयुक्त होगा, जल्दबाजी होती। संभव था कि बहुतेरे जिलों में अंतिम तौर पर संपूर्ण साक्षरता कार्यक्रम चलाने के लिए अनेक अन्य गतिविधियां संचालित करनी पड़ती।

फिर भी सैद्धांतिक समझ और सीमित अनुभवों के आधार पर कुछ अनुमान संभव थे–

- कोई भी सफल साक्षरता कार्यक्रम, एक सफल जन अभियान पर निर्भर करेगा।
- किसी भी प्रौढ़ शिक्षा अभियान को सफल बनाने के लिए जनता की भागीदारी अनिवार्य है। यह भागीदारी व्यापक होनी चाहिये। इसमें राजनीतिक दलों, मजदूर संगठनों, किसान संगठनों, महिला और युवाओं के समूहों, शिक्षकों और विद्यार्थियों, सांस्कृतिक आंदोलनों, विज्ञान आंदोलनों, स्वयं सेवी समूहों और बुद्धिजीवियों आदि की भागीदारी जरूरी है।

- ऐसे अभियान को सफल बनाने के लिए उपर्युक्त संस्थाओं, संगठनों और आंदोलनों आदि के नैतिक संबल के साथ–साथ जमीनी तौर पर एक संगठन खड़ा करने की जरूरत होगी। जो इन शक्तियों को बांधकर रख सके। वास्तविक कार्यक्रम चला सके।

- वर्तमान दशाओं में असाक्षरता को पूर्णतः खत्म करने के अभियान को सफल बनाने के लिए सभी स्तरों– कार्यकर्ता, संसाधन और धन के लिए सरकार की हिस्सेदारी की जरूरत को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

- सबसे जरूरी है कि ऐसे अभियान की सफलता के लिए 'साक्षरता' के उद्देश्य से प्रेरित, सक्षम और समर्पित लोगों का कोर–समूह होना चाहिये। ऐसे ही लोग उस सांगठनिक ढांचे को खड़ा करने में सफल हो सकते हैं, जो तमाम लोकतांत्रिक शक्तियों को एक साथ ला सकें। पढ़ाने के काम के लिए स्वयंसेवकों को खोज सके। उन्हें प्रेरित कर सके, संगठित कर सके। एकाधिक अनुभवों से यह नतीजा मिला है कि कार्यकर्ताओं को मानदेय (चाहे वह राशि कितनी भी कम क्यों न हो) देने से अक्सर समस्याएं ही खड़ी हुई हैं। पूर्णतः स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं के भरोसे अर्जित परिणाम अधिक उत्साहजनक रहे हैं।

- जिला स्तर पर संपूर्ण साक्षरता अभियानों को संचालित करते समय, प्रौढ़ शिक्षा को निरंतर बनाये रखने और शत–प्रतिशत बच्चों को स्कूल भेजने के काम साथ–साथ करने होंगे। प्राथमिक स्तर पर बच्चों के स्कूल छोड़ देने की संख्या को भी कम से कम करना होगा, ताकि सुनिश्चित किया जा सके कि पुनः 'असाक्षरता' उभर न पाये।

- वर्तमान में देश के अधिकांश जिलों को इस अभियान के लिए उपयुक्त मानदण्डों पर तैयार पाया जा सकता है। फिर भी हिंदी भाषी क्षेत्रों में अभी तैयारी संदिग्ध है। ऊपरी चर्चा में आयी तमाम सीमाओं के बीच प्रेरित कार्यकर्ताओं की खोज मुख्य मुद्दा होगा। इसीलिए 'भारत ज्ञान विज्ञान जत्था' साक्षरता के जन–अभियान के लिए जरूरी जन–शक्ति को चीह्नने, प्रेरित और विकसित करने में बेहद मददगार साबित हो सकता है।

- फिलहाल तो बहुत से स्थानों पर 'जत्था' आयोजित करने के लिए ही लोग नहीं मिल रहे। फिर भी एक बार गतिविधियां शुरू हो जाये तो स्वतः होकर जुड़ने का सिलसिला चल निकलेगा। इसी से योग्य व्यक्तियों पर पहुंच बनेगी।

• भारत ज्ञान विज्ञान जत्था' एक संभावना के दरवाजे खोल रहा है। इस संभावना कि 'साक्षरता' के मुद्दे को देश के राजनीतिक एजेंडे में प्राथमिकता से शामिल किया जाये, इस लक्ष्य को हासिल करने के रास्तों को प्रचारित करने और अभियान के लिए महत्वपूर्ण लोगों की तलाश कर उन्हें प्रेरित करने के उद्देश्य से।

यह समय है कि प्रौढ़ शिक्षा के मामले में सरकारी रिकार्ड की आलोचना करते रहने से कहीं आगे बढ़ा जाये। नीति–निर्माण और क्रियान्वयन, दोनों ही मोर्चों पर सार्थक हस्तक्षेप किया जाये। हमें यह ही सोचते नहीं बैठे रहना चाहिये कि 'असाक्षरता' को नष्ट करने के लिए एक सामाजिक बदलाव का इंतजार किया जाये। बल्कि सामाजिक बदलाव के लिए 'साक्षरता' को ही एक प्रस्थान बिंदु की तरह देखना चाहिये।

दो शर्तों पर कि यदि एम.पी. इसके सचिव बनेंगे और इसकी बैठकें दिल्ली या चेन्नई में ही होंगी, डॉ. एम.एस. आदिशैषय्या 'भारत ज्ञान विज्ञान समिति' के अध्यक्ष बनने के लिए सहमत हो गये थे। वे एक बेहतरीन अध्यक्ष थे। जिस अंदाज़ में वे बैठकों का संचालन करते 'जन विज्ञान आंदोलन' की कल्पना से परे था। आंदोलन की बैठकें अक्सर हड़बड़ी में और अव्यवस्थित होती रही थी, पर अस्सी की उम्र पार कर चुके डॉ. शैषय्या ने व्यापक, मुद्दा केंद्रित बहस में व्यवस्थित सुझावों और संभावित निर्णयों पर ध्यान केंद्रित करा कर उसमें आवश्यक अनुशासन लाया।

वे दिन राष्ट्रीय साक्षरता मिशन और भारत ज्ञान विज्ञान समिति, दोनों के ही लिए स्वर्णिम थे। प्रशासन और जन संगठन के बीच सार्थक सहयोग और समन्वय के दिन थे। बाद में वह अंतर्संबंध कमजोर पड़ने लगे। पुराने प्रशासकों के जाने के बाद वैसा वातावरण नहीं रह गया। अभियान पर प्रशासनिक कार्य–शैली हावी होते जाने से संगठन के स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं की ऊर्जा मंद पड़ने लगी थी।

समता जत्था

वर्ष 1993 में भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने महिलाओं के अखिल भारतीय जत्थे की योजना बनायी। इसे 'समता जत्था' नाम दिया गया। मुख्य नारा था महिला और पुरूष के बीच समानता का। देश के पांच अलग–अलग दिशाओं से चल कर झांसी में उनके समागम का सांकेतिक महत्व था। महिलाओं को उनके आसपास खड़े कर दिये गये सामाजिक बंधनों से मुक्ती दिलाने का यह एक रोमांचक अनुभव साबित हुआ।

इसी बीच के.के. बीजीवीएस के कोषाध्यक्ष बन कर दिल्ली आ गये थे। बाद में उन्हें संगठन में सचिव का काम सौप 1992–93 में एम.पी. केरल लौट गये थे।

किसी भी राजनीतिक दल के एजेंडे में साक्षरता का मुद्दा शामिल न था। वे अभियान का विरोध नहीं करते थे किंतु उनकी प्राथमिकताओं में भी यह शामिल न था। राज्य स्तर पर सरकारें और उनके मंत्री साक्षरता के लिए मिलने वाले धन का अतिरिक्त राजस्व की तरह ही देख रहे थे। ऐसे अनेक प्रशासनिक अधिकारी थे, जिन्होंने इसमें व्यक्तिगत रूचि लेकर अच्छे परिणाम दिये थे। उन्हें उत्साहित तो किया नहीं गया उल्टे शक की निगाहों से ही देखा गया। इससे उनका उत्साह भी ठंडा पड़ता गया। बिना सरकारी मदद के, उनके लिए आगे काम संभव न था। सरकारों और राजनीतिक–दलों में इच्छा–शक्ति की कमी से 1990 के दशक के बीच तक आते–आते यह अभियान शिथिल पड़ता गया।

इससे बीजीवीएस ने अपनी गतिविधियों में विविधता लाने की जरूरत होने लगी। संगठन ने पेयजल, जलप्रबंधन, प्राथमिक–शिक्षा आदि जन–मुद्दों पर ध्यान देना शुरू किया। जन–अधिकारों के विविध अभियानों में अपनी उपस्थिति बढ़ायी। मसलन सूचना का अधिकार, काम का अधिकार, भोजन का अधिकार, आदि–आदि। 'मनरेगा' और मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के

बिलों के पीछे भी संगठन की भूमिका रही है। यद्यपि एम.पी. ने इस समय तक आते–आते खुद को ऐसी गतिविधियों में पूर्णतः नहीं झोक रखा था। वे 'साक्षरता' से 'विकास' के मुद्दे पर जा चुके थे। दिवगंत शिक्षा शास्त्री और आंदोलनधर्मी डॉ. विनोद रायना, जो वर्ष 2002 में बीजीवीएस के राष्ट्रीय सचिव बने थे, इन अभियानों में अधिक सक्रिय रहे।

आईआरटीसी

1977 से ही केएसएसपी का एक सपना रहा–एक ग्रामीण विज्ञान और प्रौद्योगिकी अकादमी विकसित करने का। कलाडी में हुए 'वर्कर्स–कैम्प' में यह विचार पहली बार सामने आया था। हालांकि उस वक्त यह कल्पना ठोस और स्थायी नहीं बन पायी। सही वक्त का इंतज़ार चलता रहा। सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के साथ दो परियोजनाएं सफलता पूर्वक कर लेने पर पुनः इस अवधारणा पर विचार किया जाने लगा।

एम.पी. की इसमें रूची थी। एक ग्रामीण प्रौद्योगिकी केन्द्र, जिसमें डीएसटी द्वारा धन दिया जाना था, बनाना तय हुआ। इसके लिए पालक्काड का चयन इस कारण किया गया कि वहां इसे संचालित करने वाला सक्षम नेतृत्व था। शुरूआत में एनएसएस इंजीनियरिंग कालेज के प्रो. के. विश्वनाथन ने इस केंद्र के लिए अपनी सेवाएं देने का प्रस्ताव रखा। वे चार सालों तक उस जिम्मेदारी को सम्हालते रहे। फिर एक बरस एम.पी. ने वह जिम्मेदारी ली।

'विकास' का मुद्दा एम.पी. को हमेशा आकर्षित करता रहा। विकास का, उनके तई मायना रहा बच्चों के लिए एक खुशहाल दुनिया। शिक्षा, ऊर्जा, पर्यावरण, विकेन्द्रीकृत–योजना निर्माण, स्थानीय अर्थव्यवस्था आदि तमाम ऐसी गतिविधियां जो मनुष्य की जरूरत हो। आईआरटीसी के जरिये उन गतिविधियों को गति देने का अवसर था।

1990 के दौरान ही एम.पी. ने पंचायत स्तर का संसाधन एटलस बनाने की एक परियोजना तैयार की। यह काम आम जनता और विशेषज्ञों द्वारा मिलकर किया जाना था। केएसएसपी के पास वझीयुर पंचायत में ए.पी. चंद्रन द्वारा किये गये काम का अनुभव था। वे 'सेंटर फॉर अर्थ साईंस स्टडिज़' के विशेषज्ञों की मदद लेने को उत्सुख थे।

इस परियोजना में कम से कम पच्चीस पंचायतों में जन भागीदारी से संसाधन–एटलस बनाने थे। यह प्रयोग बाद में केरल की अर्थनीति और राजनीति में एक बदलावकारी कदम बना। इस प्रयोग के निष्कर्षो का कलिमासेटी पंचायत में उपयोग किया गया। संसाधन एटलस के आधार पर पंचायत के लिए एक समग्र विकास रिपोर्ट तैयार की गयी। वहां का समाजार्थिक सर्वेक्षण किया गया।

इसी आधार पर 'सेंटर फार डेवलेपमेंट स्टडिज़' ने एक कार्य परियोजना 'पंचायत स्तरीय विकास योजना', केरल शोध कार्यक्रम तहत तैयार की। थामस आइज़ेक इस परियोजना के प्रमुख थे, किंतु इसी बीच हुए प्रादेशिक चुनावों में वाम–जनतांत्रिक मोर्चे की सरकार बन जाने से उन्हें सरकार के योजना बोर्ड में सदस्य बनाया गया। केएसएसपी के पूर्व अध्यक्ष डॉ. इकबाल और कॉमरेड ई.एम. श्रीधरण भी उसमें शामिल किये गये थे। अन्ततः परियोजना की जिम्मेदारी एम.पी. के कंधों पर आ गयी।

जन–योजना अभियान

आइज़ेक एक विशिष्ट कल्पना लाये कि क्यों न प्रदेश की नौवीं पंच वर्षीय योजना को एक जन–योजना बनाया जाये। जनता क्या चाहती है, जनता ही तय करे। इसके लिए सरकार चालीस फीसद बजट का प्रावधान करेगी। विभागों द्वारा स्थानीय स्वशासी संस्थानों के लिए कोई योजना नहीं बनायी जायेगी। हमारी पंचायतों को वास्तविक स्थानीय स्वशासी संस्थानों के रूप में विकसित किया जाये। ई.एम.एस. से यह विचार सांझा किया गया। जो उन्हें पसंद आया। वे तैयार हो गये।

विकेंद्रीकरण और लोकतांत्रीकरण का किसी ने भी विरोध नहीं किया, इस तरह 17 अगस्त 1996 को जनता की योजना का अभियान शुरू किया गया।

विकेन्द्रीकरण के मसले पर एक समिति का गठन किया गया। पश्चिम बंगाल सरकार के पूर्व आर्थिक सलाहकार डॉ. सत्यव्रत सेन को इसका अध्यक्ष बनाया गया। एम.पी. भी उस समिति में थे। तीन हफ्तों में समिति ने अपनी अनुशंसाएं दे दी। जिसमें वे आधार बिंदु थे, जिन पर लोकतांत्रिक–विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया पूरी की जानी थी। कुछ को आश्चर्य होता है कि जनवादी–केंद्रीयता के सिद्धांत पर चलने वाले एक वामदल की सरकार ने लोकतांत्रिक–विकेंद्रीकरण की यह प्रक्रिया चलायी। एम.पी. का मानना रहा कि वामदल ही ऐसी प्रक्रिया चला सकते है। वे यह भी मानते हैं कि यदि सोवियत–संघ में भी प्रशासन और अर्थनीति में लोकतांत्रिक–विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया चलायी गयी होती, तो आज दृश्य दूसरा ही होता।

पहले सेन समिति और फिर वर्ष 1998 के अंत तक एमपी 'जनता की योजना' अभियान में अत्यधिक व्यस्त रहे। यूं आर्थिक–नियोजन में कभी उनकी रूची का विषय नहीं रहा, लेकिन जवाबदारी आ जाने पर उन्होंने चुनौति को स्वीकार किया। इस प्रयोग की अपनी संभावनाएं–सीमाएं रही। इन अनुभवों पर लिखी एमपी की किताब 'इम्पावरींग द पीपुल', बाहरी लोगों के लिए उस प्रक्रिया को जानने–समझने का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज साबित हुई।

आंदोलनधर्मी सेवा निवृत्त नहीं होते

वर्ष 1992 में एम.पी. ने त्रिवेन्द्रम छोड़ कर त्रिशूर जा बसने का फैसला किया। वहां पुश्तैनी मकान के परिसर में ही उन्होंने अपना छोटा–सा आशियाना खड़ा किया। दोनो बेटे अपनी–अपनी शिक्षाएं पूरी कर अपनी

रोजी–रोटी कमाने लगे थे। वर्ष 2008 तक एम.पी., बीजीवीएस के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे। एआईपीएसएन में लंबे अर्से से वे किसी औपचारिक पद पर नहीं है। तब भी इन संगठनों की विविध गतिविधियों, बैठकों, आयोजनों में वे तत्परता और उत्साह से हिस्सेदारी करते हैं। आंदोलनों से उनका जुड़ाव उतना ही जीवंत है। उनके दिमाग में ढेरों योजनाएं हैं। किताबें लिखने की प्रस्तावनाएं है। वे अनुवाद कर रहे हैं। अपने संस्मरणों को तरतीब दे रहे हैं। यात्राएं कर रहे हैं। शिक्षा, साक्षरता, ऊर्जा, विकेन्द्रीकरण जैसे विषयों पर तो उनकी सक्रियता बनी ही हुई है और वे यथा–जरूरत मशवरे देते हैं, दिये गये काम को समय से पहले पूरा करते हैं। आईआरटीसी की प्रयोग धर्मिता से तो जुड़े ही हुए हैं, रसोई घर के अपने घरेलु विश्वविद्यालय में तल्लीनता से प्रयोग कर रहे हैं। आयुर्वेद के प्रति उनका बाल्यकालीन प्रेम अब भी बरकरार है। औषधी बनाने की अपनी उत्सुकता को वे अब भी बचाए हुए है। सादगी, सरलता, कर्मठता और सक्रियता के उनके गुण उम्र के साथ और निखरे ही है।

एम.पी. की यह धारणा कि खरा कम्युनिस्ट वहीं होता है, जो दिल से कम्युनिस्ट है, केवल दिमाग से कम्युनिस्ट बनने की इच्छा रखने वाले खरे नहीं हो सकते। इसलिए वे दिल से कम्युनिस्ट बने हुए हैं। उन करोड़ों वंचितों के प्रति दिन–रात चिंता–मग्न है, जन विज्ञान आंदोलन जिसका पक्षधर है।

आगे हम एम.पी. द्वारा लिखे गये दो लेख दे रहे हैं। पहला साक्षरता अभियान के कुछ वर्षों बाद और दूसरा एआईपीएसएन के पच्चीस वर्ष पूरे होने के अवसर पर लिखा गया था। इनसे भारत के साक्षरता आंदोलन की सम्भावनाओं और सीमाओं के साथ ही 'जन विज्ञान आंदोलन' के भविष्य की चिंता को समझने में सहायता होगी।

साक्षरता : एक जन–अभियान

सीखने की प्रक्रिया में सिर्फ साक्षरता पर जोर डालना शामिल नहीं है, बल्कि इसका महत्व लोगों के कार्यात्मक क्षमता की बढ़ोतरी और उनकी जानकारी के स्तर का विकास करना है। खासकर गरीबों और निरक्षरों की दुर्दशा को देखते हुए इसकी महत्ता और बढ़ी है। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को देखने का यह मूलभूत और क्रांतिकारी तरीका है। शिक्षा का मतलब वर्तमान व्यवस्था और प्रतिष्ठानों को बनाए रखना नहीं, बल्कि इसका परिवर्तन करना है।

वर्तमान भारतीय परिदृश्य में साक्षरता के प्रसार को सिद्धांततः स्वीकार किया गया है। राष्ट्रीय साक्षरता कार्यक्रम के नीति निर्धारक तत्व और योजनाकार अपने सीमित ज्ञान के उपयोग एवं विचार और तकनीक के 'कैलकुलस' का सामंजस्य स्थापित कर इस क्षेत्र में सफलता की उम्मीद लगाए बैठे है। मगर इस सैद्धांतिक वचनबद्धता को कायम रखना आसान नहीं है; क्योंकि साक्षरता कमोबेश एक रानीतिक निर्णय है और राजनीति की बदलती स्थितियों से इसे बचाए रखना मुश्किल है।

भारत की निरक्षर जनता को साक्षर बनाने के लिए राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का गठन सरकार का तीसरा प्रयास है। इससे पहले एन.ए.ई.पी. और ए.ई.पी. के तहत इस अभियान को चलाया गया था। पर वयस्क शिक्षा के नाम पर नौकरशाहों की लंबी–चौड़ी फौज और रातों–रात पैदा हुई स्वयंसेवी संस्थाओं ने इस अभियान का कचूमर निकाल दिया, क्योंकि उनके भीतर साक्षरता अभियान को लेकर न तो कोई स्पष्ट अवधारणा थी और न ही राजनैतिक इच्छा–शक्ति। साक्षरता अभियान को एक जनांदोलन की तरह चलाने की बजाय सरकारी हुक्मरान इसे एक सरकारी संस्था के रूप में चलाना चाहते थे। सरकार भी साक्षरता के साथ अभियान शब्द के स्थान पर कार्यक्रम शब्द का इस्तेमाल करती थी। दृढ़निश्चय और

राजनीतिक इच्छा के बगैर चलाए गए इस कार्यक्रम को एक तो लोगों ने खारिज कर दिया, दूसरे सरकार को भी अपनी गलती का अहसास हुआ।

लोगों का मानना है कि समाजवादी देशों में ही साक्षरता अभियान को एक जनांदोलन के तौर पर चलाया जा सकता है। और, भारत में समाजवादी देशों की तरह न तो पूर्व में कोई जनांदोलन हुआ है और न ही भविष्य में फिलहाल होने की संभावना है। एक हद तक यह सही भी है, क्योंकि पिछली सदी में अगर रूस,चीन, क्यूबा, निकारागुआ, वियतनाम और तंजानिया में साक्षरता अभियान एक जनांदोलन का आकार ग्रहण कर पाया तो इसके पीछे व्यवस्था से उपजा जनाक्रोश और सामाजिक बदलाव के लिए चलाया गया लंबा संघर्ष था।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का गठन इस दिशा में तीसरा प्रयास था। मगर इनमें भी उन्हीं गलतियों को दुहराया गया जिन कारणों से एन.ए.ई.पी. और ए.ई.पी. कार्यक्रमों को रद्द करना पड़ा था। संगठित राजनीतिक दलों ने निरक्षरता उन्मूलन और प्राथमिक शिखा के लोकव्यापीकरण को अपनी प्राथमिकता सूची में नहीं रखा। अभियान में कुछ स्वयंसेवी संगठनों की भागीदारी को आंदोलन का पर्याय मान लिया गया, जबकि पूर्व के अनुभवों से स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका को बेहतर ढंग से समझा जा सकता था। इस स्थिति में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के सामने दो विकल्प थे। पहला 'इच वन टीच वन' कार्यक्रम और दूसरा केन्द्र आधारित कार्यक्रम का मॉडल। इनमें किसी किस्म की सामाजिक भागीदारी नहीं थी।

इन्हीं परिस्थितियों में जन विज्ञान आंदोलन और राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के बीच सहयोग की प्रक्रिया आरंभ हुई। 'जन विज्ञान आंदोलन' के तहत भारत जन विज्ञान जत्था की चमत्कारिक सफलता इसका एक बड़ा कारण बनी। 'जन विज्ञान आंदोलन' की यह स्पष्ट समझ है कि भारत में रूस, चीन, क्यूबा या वियतनाम के तर्ज पर साक्षरता अभियान नहीं चलाया जा सकता, क्योंकि भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियां

उन समाजवादी देशों से मेल नहीं खाती। इस स्थिति में लोगों को इस अभियान से जोड़ना और उनके भीतर साक्षरता की भूख पैदा करना ही एकमात्र रास्ता नज़र आया। आज 'जन विज्ञान आंदोलन' लोगों को भीतरी और बाहरी गुलामी से आज़ाद कराने के लिए साक्षरता अभियान का दूसरे स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के रूप में देखता है। यह कार्य अंग्रेजों की गुलामी के खिलाफ संघर्ष से भी अधिक चुनौतिपूर्ण है। पी.एस.एम. की नज़र में इस आंदोलन का मकसद लोगों में सांप्रदायिक सद्भाव, आपसी भाईचारा और सही अर्थों में एक लोकतांत्रिक भारत का निर्माण करना है और साक्षरता इसका एक बड़ा माध्यम हो सकती है।

इन बुनियादी अवधाराणाओं को आत्मसात करते हुए केरल के अर्नाकुलम में केरल शास्त्र साहित्य परिषद की मदद से प्रयोग के तौर पर पहली बार साक्षरता अभियान चलाया गया। इसके लिए बड़े पैमाने पर सरकारी अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति पर लिया गया। प्रतिनियुक्ति की अवधि में सरकारी अधिकारियों ने नौकरशाही के तंत्रों से आज़ाद होकर इस अभियान को सफल बनाने के लिए स्वयंसेवी भावना, उत्साह और लगन के साथ काम किया। इसमें जिला कलेक्टर का भरपूर सहयोग मिला जो स्वयं के.एस.एस.पी. के आजीवन सदस्य और पूर्व में इस संस्था के उपाध्यक्ष थे।

इस अभियान के आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए। करीब 70 फीसद असाक्षरों को साक्षर बनाया जा सका और इस अभियान से बड़ी संख्या में स्वयंसेवक निकलकर सामने आए। इधर कर्नाटक के साउथ कनारा तथा बीजापुर में साक्षरता अभियान अर्नाकुलम से पहले शुरू हुआ था। पांडिचेरी में एक प्रतिष्ठित स्वयंसेवी संस्था पांडिचेरी साइंस फोरम मौजूद थी, जबकि कनारा और बीजापुर में ऐसी कोई संस्था नहीं थी। इन दोनों जिलों के कलेक्टरों के सामने दो विकल्प थे : या तो वे ग्रास रूप पर जन संगठन बनाएं अथवा इसके बगैर ही अभियान को आगे बढ़ाएं।

साउथ कनारा के जिलाधिकारी जन संगठन बनाने में सफल रहे और वहां अभियान को थोड़ी–बहुत सफलता भी मिली, मगर बीजापुर का अभियान जन संगठन के अभाव में टांय–टांय फिस्स हो गया।

हमें यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि तकरीबन सभी राज्यों में के.एस.एस.पी. अथवा पी.एस.एफ. जैसी समझदारी दूसरे स्वयंसेवी संगठनों के पास नहीं थी। इन्हीं कारणों से राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने 1988 में 'जन विज्ञान आंदोलन' से सहयोग मांगा। शुरुआत में 'जन विज्ञान आंदोलन' को साक्षरता के लिए वातावरण निर्माण करने और लोगों में साक्षरता के प्रति ललक पैदा करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। बाद में साक्षरता अभियान के कार्यान्वयन के लिए बड़े पैमाने पर जन संगठन बनाने की आवश्यकता महसूस की गई और भारत ज्ञान विज्ञान समिति का गठन किया गया।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने केरल शास्त्र साहित्य परिषद् और पीपुल्स साइंस फोरम के अनुभवों का लाभ उठाया और उनकी बुनियादी अवधारणाओं को सिद्धांत रूप में स्वीकार करते हुए मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, महाराष्ट्र, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में अपनी सांगठनिक क्षमताओं का विस्तार किया। इधर पिछले तीन–चार वर्षों के दौरान भारत ज्ञान विज्ञान समिति सही मायने में एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में उभरकर सामने आई है और इसने साक्षरता की तमाम विधाओं की जानकारी से अपने आपको लैस किया है। सक्षम स्त्रोत व्यक्तियों का एक बड़ा समूह समिति के पास आज हर राज्य में मौजूद है जो साक्षरता अभियान को एक जनांदोलन बनाने में जुटे हैं। हालांकि समिति का विस्तार आज भी साक्षरता अभियान के विस्तार को देखते हुए पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

अर्नाकुलम के तर्ज़ पर चलाए गए साक्षरता अभियान को व्यापक लोक प्रसिद्धि मिली जिसमें नौकरशाही की भूमिका सीमित थी। मगर आज इस अभियान पर नौकरशाही का दबदबा बढ़ता जा रहा है। इससे अभियान

को धक्का पहुंचा है। संगठन के विस्तार और उसकी क्षमता से ज्यादा योजनाओं को यदि एक साथ लिया जाए तो इसके नकारात्मक परिणाम सामने आते हैं और अभियान पूरी तरह फ्लॉप साबित होता है। आज ऐसा ही हो रहा है। आज की तारीख में जहां साक्षरता योजनाओं की विफलता बढ़ी है, वहीं जिला प्रशासन साक्षरता अभियान के आंकड़े बढ़ा–चढ़ा कर पेश कर अपनी जिम्मेदारी से मुंह चुराने का प्रयास करता है। राज्य सरकार भी साक्षरता अभियान को गंभीरता से लेने की बजाय इसे केन्द्र सरकार से मिले अतिरिक्त आय के एक स्त्रोत के रूप में देखती है। यह प्रवृत्ति अभियान के लिए खतरनाक ही नहीं, बल्कि इसे डुबा देने वाली है।

राष्ट्रीय पैमाने पर साक्षरता अभियान को सफलतापूर्वक चलाने हेतु राजनैतिक इच्छा सबसे जरूरी है। सामान्यतः राजनीतिक दलों से यह उम्मीद की जाती है कि वे इस अभियान को चलाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करेंगे। मगर भारत के राजनीतिक दलों में इसके प्रति कोई रुझान नज़र नहीं आता। हमारे कहते का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी दल साक्षरता अभियान का विरोध करते हैं। कुछ राजनीतिक दलों ने तो साक्षरता अभियान को चलाने में भरपूर सहयोग किया है, मगर यह उनके एजेंडे से बाहर है। राज्य स्तर पर सरकार से इस अभियान को कितना सहयोग मिला पाता है, इसे इन उदाहरणों से तौला जा सकता है।

अधिकतर जिलों में राज्य सरकार जिलाधिकारियों का तबादला साक्षरता अभियान के बीच में ही कर देती है। इससे अभियान की कमर टूट जाती है, क्योंकि जिला स्तर पर अभियान के वर्तमान स्वरूप के अनुसार कलेक्टर की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। इस मामले में केरल (एल.डी. एफ. के शासनकाल में) और पश्चिम बंगाल ही ऐसे राज्य हैं जहां संपूर्ण साक्षरता अभियान के दौरान जिला कलेक्टरों का तबादला नहीं किया गया। इतना ही नहीं, इन राज्य सरकारों ने इस अभियान के लिए हजारों की संख्या में शिक्षक और सरकारी कर्मचारियों को 'सेकेंडमेंट' के आधार पर उपलब्ध करवाया।

साक्षरता अभियान से लोगों की चेतना का विकास कितना हुआ है, इसका बेहतरीन नमूना नेल्लोर है, जहां महिलाओं ने लामबंद होकर शराब का विरोध किया। स्वाभाविक है कि इससे वर्तमान व्यवस्था के खम्भे हिल गए, क्योंकि वे महिलाओं में इस तरह की जागृति की कल्पना तक नहीं कर सकते थे। इधर लोगों ने साक्षरता अभियान से बढ़ी चेतना और विरोध के साहस से राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों को खौफ होने लगा है। पांडिचेरी, आंध्र, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की राज्य सरकारें और कलेक्टर भा.ज्ञा.वि.स. के साथ प्रतिकूल व्यवहार करने लगे हैं, क्योंकि समिति साक्षरता आंदोलन के सरकारीकरण का विरोध करती है।

'जन विज्ञान आंदोलन' साक्षरता अभियान अपने स्वार्थ के लिए नहीं चलाता, बल्कि वह इस अभियान के सहारे प्राथमिक शिक्षा की मांग को बढ़ाना चाहता है, गरीबों और समाज के पिछड़े तबकों में आत्मसम्मान का बोध पैदा करना चाहता है ताकि उन्हें बड़ आंदोलनों के लिए तैयार किया जा सके। और अब तक की सफलता से यह साबित हो गया है कि बगैर किसी क्रांतिकारी परिस्थिति के भी सामाजिक बदलाव के लिए साक्षरता आंदोलनों में सामूहिक भागीदारी को स्वयंसेवी भावनाओं के साथ सुनिश्चित किया जा सकता है।

राज्यसत्ता हमेशा से लोगों में जागरूकता पैदा करने वाले शिक्षा और साक्षरता जैसे कार्यक्रमों से खौफ खाती है, क्योंकि पढ़ने–लिखने के साथ–साथ गरीबों में जैसे–जैसे चेतना का विकास होता है, उन पर राज्य सत्ता की पकड़ कमजोर पड़ती जाती है। यही कारण है कि पूर्व मे चलाए गए साक्षरता अभियान को निरक्षरों से दूर रखा गया, ताकि सत्ताधारी वर्ग का वर्चस्व समाज पर बना रहे। इधर वर्तमान अभियान को जनांदोलन से जोड़े जाने के कारण नौकरशाही और सत्ताधारी वर्ग अपने–आपको सांसत में महसूस कर रहा है। इस वजह से बार–बार अभियान के सरकारीकरण का प्रयास किया जाता है और साक्षरता अभियान की विफलता पर वे आंसू बहाने की बजाय खुश होकर तालियां पीटते हैं। यह समय इन चुनौतियों का डंटकर मुकाबला करने और कमान अपने हाथों में लेने का है।

भविष्य के परिप्रेक्ष्य

भारत ज्ञान विज्ञान समिति जल्दी ही अपनी पांचवीं सालगिरह मनाने जा रही है। इन पांच वर्षों में हमने ढ़ेर सारी प्रामाणिक उपलब्धियां हासिल की हैं, जिन पर गर्व किया जा सकता है। पर साथ ही हमें विफलताओं का सामना भी करना पड़ा है, क्योंकि सफलता और आकांक्षाओं के बीच की खाई बहुत चौड़ी है।

साक्षरता अभियान का दायरा आज विस्तृत हो चुका है। भारत के सभी राज्यों में समिति की गतिविधियां बढ़ी हैं। आज साक्षरता अभियान सिर्फ असाक्षरों को ककहरा सिखाने का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि इसकी अगली कड़ी को हम प्राथमिक शिक्षा, भूमि साक्षरता, स्वास्थ्य की देखभाल और पंचायती राज व्यवस्था में लोगों की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करने वाले औज़ार के रूप में देख रहे हैं।

वैसे पांच वर्ष का समय बहुत ज़्यादा नहीं होता। फिर भी जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो जहां–तहां सुस्ती, थकावट और असहायता के लक्षण भी नज़र आते हैं। साक्षरता अभियान के विभिन्न क्षेत्रों में लोगों की बढ़ती भागीदारी को दिशा प्रदान करने में समिति अपने को असहाय महसूस करती है। इस चुनौती से निपटने के लिए भारत ज्ञान विज्ञान समिति की संख्यात्मक और गुणात्मक क्षमताओं का कई गुना विस्तार जरूरी है, ताकि इन अवसरों का लाभ उठाया जा सके। आनेवाले वर्ष में इसके लिए सचेतन प्रयास होने चाहिए। हिमाचल प्रदेश इस दिशा में पहल कर चुका है। मगर भारत ज्ञान विज्ञान समिति की दूसरी राज्य इकाइयों को इसके लिए अपने संरचनात्मक ढांचे में बुनियादी बदलाव लाने पड़ेंगे। यह मुश्किल काम नहीं है। हिमाचल ज्ञान विज्ञान समिति के संविधान को इस बदलाव के लिए मार्गदर्शक के रूप में लिया जा सकता है।

भारत की जनता को गरीबी, निरक्षरता, बेकारी, निराशा और रूढ़िवाद जैसी त्रासदायक स्थितियों से बाहर निकालने के लिए हम लोग एक

व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन खड़ा करना चाहते हैं, ताकि समाज के उच्च वर्गों में बढ़ते उपभोक्तावाद से सामाजिक मूल्यों में आई गिरावट और नैतिक पतन को रोका जा सके; आपसी रंजिश, जाति–धर्म–समुदाय, भाषा और संस्कृति के कलह से लोग ऊपर उठें; धर्मनिरपेक्ष संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य का आधार पुख्ता हो; पंचायती राज व्यवस्था, स्वशासन और रचनात्मक लोकतांत्रिक संस्था की बुनियाद मज़बूत हो और इसमें लोगों की हिस्सेदारी को बढ़ाया जा सके।

आजादी के बाद ज्ञान विज्ञान आंदोलन सबसे अहम रचनात्मक आंदोलन के रूप में उभरा है। इसकी बुनियाद भारत जन विज्ञान आंदोलन के अथक परिश्रम का प्रतिफलन है। गरीबों में लोकतांत्रिक समझ और जागृति के स्तर को बढ़ाना इस अभियान की जिम्मेदारी बनती है। यहां योग्यता सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है और जन विज्ञान आंदोलन इसमें अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभा सकता है।

हजार साल पहले के मुकाबले आजा जीवन अत्यंत कठिन हो गया है और 21वीं सदी में यह और भी चुनौती भरा होगा। इधर विज्ञान और तकनीक का इस्तेमाल लोगों के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है और आगे इसके व्यापक विस्तार की संभावना है। इस स्थिति में एक साधारण व्यक्ति को वैज्ञानिक या तकनीशियन बनाने की बजाय उनके भी परिस्थितियों के विश्लेषण की वैज्ञानिक क्षमता का विकास ज्यादा जरूरी है; ताकि वे तकनीकों के प्रयोग और विकास योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषण करने में सक्षम हो सकें। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए हमने साक्षरता आंदोलन का कार्यक्रम अपने हाथों में लिया है, क्योंकि अगर भारत की जनता निरक्षर रही तो उनमें ये क्षमताएं पैदा नहीं हो सकतीं। इसकी शुरुआत विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए चलाए गए अभियान से पहले भी हो चुकी है।

हमारी समझ है कि सिर्फ साक्षरता अभियान चलाकर लोगों में ये क्षमताएं विकसित नहीं की जा सकतीं। अतः हमें एक तरफ तो उन कारणों का निदान करना होगा जो निरक्षरता के लिए जिम्मेदार हैं, दूसरी तरफ लिखने–पढ़ने से आगे उनके भीतर विश्लेषण, निर्णय और कार्रवाई करने का हौसला पैदा करना होगा। पहले उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमने प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण का अभियान चलाने का फैसला लिया है, जबकि दूसरे उद्देश्य के लिए मुख्य रूप से विभिन्न विकास योजनाओं के साथ–साथ भूमि साक्षरता, सफाई का प्रबन्ध, पेयजल, स्वास्थ्य शिक्षा, जल विभाजक प्रबंध, क्षेत्र विशेष की योजनाएं और विकास पर वाद–विवाद के आयोजन की योजना है। परन्तु अगर यह देखें कि इन अपेक्षाओं की तुलना में हम कितना कुछ कर पाए हैं तो उपलब्धि नगण्य मालूम पड़ती है।

वर्तमान परिस्थितियों में यदि यह कहा जाए कि जितनी लंबी चादर हो उतना ही पैर फैलाया जाए तो इसका कोई मतलब नहीं निकलता। हम अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप सुविधाएं चाहते हैं और यदि सुविधाएं नहीं हैं, तो इनका विस्तार करना है। हमें अपनी क्षमताओं का विकास गुणात्मक और संख्यात्मक दोनों रूप में करना है और हमारे सामने सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही है।

इस दिशा में हमने कुछ कदम बढ़ाए हैं। इनमें जन संवाद (लोक संपर्क आंदोलन), ज्ञान विज्ञान केन्द्रों की स्थापना, पुस्तकालय की व्यवस्था और अध्ययन–अध्यापन के प्रति जागृति उल्लेखनीय है। आने वाले दो–तीन वर्षों में हम 21वीं सदी की चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए कुछ ठोस कार्यक्रम निर्धारित करने जो रहे हैं।

सवाल उठता है कि क्या इस आंदोलन के लिए एक बार फिर से लोगों की संवेदनाओं को जगाना जरूरी है? निश्चित रूप से इसका जवाब हां है। स्थानीय स्तर के संगठन निर्माण करने और लोगों में इस

अभियान के प्रति जागृति पैदा करने में कला जत्था की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके लिए इस तरह के अन्य कार्यक्रमों के बारे में भी हम लोग सोच सकते हैं :

1. बड़ी संख्या में विज्ञान उत्सवों का आयोजन, शिक्षकों का आदान–प्रदान कार्यक्रम और दिल्ली में एक विशाल राष्ट्रीय उत्सव का आयोजन।

2. कला जत्था का बड़ी संख्या में विनिमय यानी एक्सचेंज जत्था। वर्ष 1987 में बीजेवीजे और वर्ष 1993 में समता के बहुभाषी दलों ने विभिन्न राज्यों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे। इसी तरह वर्ष 1990 और 1992 में बीजेवीजे के संस्कृति कर्मियों के एक भाषी दलों ने अपने ही राज्य में कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे। वर्ष 1990 में ही हमारे एकभाषी दलों ने दूसरे राज्यों का दौरा कर विभिन्न भाषाओं में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये। इनमें केएसएसपी जत्था द्वारा बिहार और मध्य प्रदेश में प्रस्तुत कार्यक्रम महत्वपूर्ण थे। हमारा सुझाव यह है कि केएसएसपी जत्था को विस्तार दिया जाए और इसमें बड़ी संख्या में दूसरे राज्यों से भागीदारी बढ़ाई जाए। एक राज्य, दूसरे राज्य में बड़ी संख्या में दल भेजें। इस तरह के कुल दलों की संख्या 150 से 180 के करीब हो, आदान–प्रदान करने वाले राज्य इनकी तिथियों का निर्धारण आपसी बातचीत के आधार पर कर सकते हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है, तात्कालिक सवाल क्षमताओं के विकास और विस्तार का है। यह सुविचारित गतिविधि से ही संभव है। अंतरिक्ष उत्सव, सीखने का आनंद उत्सव, पुस्तकालय अभियान, जन संसद और भूमि साक्षरता जैसे कार्यक्रम पहले ही लिये और पूरे किए जा चुके हैं। नयी गतिविधियों में जल विभाजक प्रबंध, ग्रामीण इंजीनियरिंग, तकनीकी क्षमताओं का विकास और फील्ड और तकनीकी दलों के निर्माण की संभावना सामूहिक उत्पादन क्षेत्रों में बढ़ रही है। इन गतिविधियों को आगे बढ़ाने

और सांगठनिक क्षमताओं को मजबूती प्रदान करने की जरूरत है। हमारी योजना है कि इस सदी के अंत तक प्रत्येक ग्राम पंचायत और नगरपालिका क्षेत्र में एक ज्ञान विज्ञान केन्द्र या स्टडी एण्ड एक्शन ग्रुप (एस.ए.जी.) खोला जाए। इसमें पांच वर्ष का समय लग सकता है। कुल 2 लाख ज्ञान विज्ञान केन्द्र स्थापित करने के लिए सालाना लक्ष्य निर्धारित किया जा सकता है। इस तरह के दलों की गतिविधियां निम्नलिखित प्रकार की हो सकती हैं –

1. सतत् सीखना और दूसरे को सिखाना।
2. साक्षरता अभियान और खासकर उत्तर साक्षरता अभियान को सफल बनाना।
3. प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण अभियान में मदद करना।
4. सफाई, पेयजल, स्वास्थ्य शिक्षा अभियान चलाना और समाज के भीतर स्वास्थ्य के बारे में एक आदर्श–विचारधारा का निर्माण करना।
5. सहयोग पर आधारित रिसोर्स मैपिंग का इस्तेमाल कर लोकल एरिया प्लानिंग में विशिष्टिता हासिल करना और सामाजिक –आर्थिक सर्वे एवं विकास योजनाएं बनाना।
6. परिवार, समाज, पंचायत, राज्य और देश के स्तर पर आत्मनिर्भरता के लिए काम करना।
7. पी.एस.एम. और अपने काम के लिए आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करना।
8. सामाजिक सद्भाव के विकास के लिए लोगों के बीच सामुदायिक गतिविधियां चलाना और कॉस्मिक फेस्टिवल, सीखने का आनंद तथा कला जत्था गतिविधियों को तेज करना।

राज्य और जिला स्तर पर इस तरह के कार्यक्रम चलाने के लिए मजबूत नेतृत्व और बड़ी संख्या में दक्ष कार्यकर्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी। यद्यपि शुरुआती दौर में इसके लिए हमें मंत्रालय से आर्थिक सहयोग मिल सकता है, पर हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि स्थानीय

लोगों के सहयोग से आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनें, ताकि ये कार्यक्रम सतत् रूप से चलाए जा सकें। इसकी एक संभावना पुस्तकालय अभियान से बनती है। मध्यवर्गीय मां–बाप को अपने बच्चों को विज्ञान की अच्छे किस्म की पठन–पाठन सामग्री के साथ–साथ अन्य सामग्री स्वयं प्रदान करने के लिए प्रेरित करना एक दूसरा रास्ता हो सकता है। दोनों के लिए विज्ञान साहित्य का बड़े पैमाने पर प्रकाशन और विज्ञान सामग्री का प्रचार–प्रसार, बच्चों की किताबें और पत्रिकाएं, संदर्भ पुस्तकें, मोनोग्राफ, लोकप्रिय पुस्तकें जरूरी हैं। इसके लिए भारत ज्ञान विज्ञान समिति और अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क ने सम्मिलित रूप से एक कार्ययोजना तैयार की है, ताकि 15 से 20 उपयुक्त व्यक्तियों का इस्तेमाल प्रकाशन के प्रयासों में व्यावसायिक तौर पर किया जा सके। इधर केएसएसपी प्रति वर्ष 50 लाख रुपये का विज्ञान साहित्य प्रकाशित कर रही है। दूसरे संगठन भी मिलकर इतनी ही पुस्तकें छाप रहे हैं।

इसे निश्चित तौर पर बढ़ाया जा सकता है और इसकी जरूरत भी है। सवाल यह उठता है कि क्या हम वर्ष 1996–97 तक हिन्दी प्रकाशनों के लिए एक करोड़ का और दूसरी भाषाओं के लिए 20–20 लाख रुपये का लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं और इसमें से आधे से दो–तिहाई राशि वर्ष 1995–96 तक जुटा सकते हैं? हम लोग इसके लिए लेखकों, संपादकों की कार्यशालाओं की एक श्रृंखला चला सकते हैं, ताकि बच्चों और नवसाक्षरों के लिए पुस्तकों का प्रकाशन हो सके। राज्य में भी प्रकाशन की सुविधा खड़ी की जा सकती है। इधर हम लोगों ने ग्रामीण स्तर पर सार्वजनिक पुस्तकालय के निर्माण की शुरुआत की है। इसके लिए नेशनल बुक ट्रस्ट से सक्रिय सहयोग लिया जा सकता है।

यह समय नए तरीके ढूंढ़ने का है। जन विज्ञान आंदोलन से इसकी शुरुआत की गयी थी। इसने बड़े पैमाने पर प्रशानिक अधिकारियों और नागरिकों को इस अभियान के लिए प्रेरित किया। इससे अभियान तेजी से बढ़ा। लेकिन इसकी सबसे बड़ी खामी यह रही कि साक्षरता आंदोलन के बढ़ने के साथ–साथ प्रशासनिक अधिकारियों का हस्तक्षेप भी बढ़ता गया। अब ज्ञान विज्ञान आंदोलन को एक नई पहल करनी है। वर्तमान के

प्रशासन और लोगों के साथ को बदलकर लोगों और प्रशासन के साथ चलाना है। पांच वर्ष पहले हम इस तरह सोच भी नहीं सकते थे, क्योंकि न तो हमारे पास किसी जिले में लोग थे और न ही संगठन। मगर आज स्थितियां बदल गयी हैं। हमारे पास आज भारत के 200 जिलों में एक मजबूत दल है और हम सुदृढ़ बुनियादी ढांचे का निर्माण कर सकते हैं, ताकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उत्तर साक्षरता अभियान को बचाया जा सके, साक्षरता अभियान को सही मायने में एक जनांदोलन बताया जा सके और 'जन विज्ञान आंदोलन' को मजबूती प्रदान किया जा सके। ये प्रयास साक्षरता अभियान में अपना ऐतिहासिक योगदान दे सकते हैं।

'जन विज्ञान आंदोलन' के लिए घोषणापत्र

दुनिया के लोग आज दो वर्गों में बंटे हुए है। पहले वर्ग में वे हैं, जो लगातार गरीब होते जा रहे हैं अथवा जिनके सामने गरीबी का खतरा बना हुआ है। दूसरा वर्ग लगातार अमीर होते जा रह लोगों का हैं। जो, पहले वर्ग के गरीबों और धरती के संसाधनों की कीमत पर अमीर हो रहे हैं।

'जन विज्ञान आंदोलन' का 'जन' पहले वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। लगातार गरीब होते हुए लोगों का। यह आंदोलन हमेशा से इसी वर्ग का पक्षधर रहा है। जहां भी पहले और दूसरे वर्ग के हितों में टकराव होता है, 'जन विज्ञान ओदालन' दूसरे वर्ग के मुखालिफ होता है।

यहां 'विज्ञान' का अर्थ ज्ञान की तमाम शाखाओं से है। सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान, सैद्धांतिक विज्ञान और व्यावहारिक विज्ञान, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी। जो प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों और मनुष्य–मनुष्य के बीच के संबंधों से जन्में हैं। यह आंदोलन, मानव और प्रकृति को तीन परस्पर संबंधित व्यवस्थाओं के संदर्भ में देखता है।

इन तीन व्यवस्थाओं में पहली हैं–भौतिक–जैविक व्यवस्था। जिसमें तमाम सजीव और निर्जीव वस्तुएं आती हैं। जैसे कि प्राकृतिक विज्ञान और इंजीनियरिंग तथा प्रौद्योगिकी के तहत आने वाले विषय।

दूसरी है–समाजार्थिक व्यवस्था। जिसमें 'सामाजिक विज्ञान' के विषय आते हैं। जो 'भौतिक–जैविक' व्यवस्था के साथ मनुष्य की अंतःक्रिया और मनुष्य–मनुष्य के रिश्तों से जन्मते हैं।

तीसरी है–'सांस्कृतिक व्यवस्था'। जिसमें पूरी मानव–जाती आती है। अकेले और सामूहिक रुप में भी। इसमें उनके आपसी संबंधों और प्रकृति के साथ के उनके संबंधों के मसले आते हैं। जिसे हम 'मानविकी' कहते हैं।

मानव के इतिहास और विकास का अर्थ ही है, ज्ञान का विस्तार। वह ज्ञान जो मनुष्य ने आसपास की तमाम सजीव–निर्जीव वस्तुओं के व्यवहार से अर्जित किया है। उस ज्ञान का उपयोग खुद के जीवन की उन्नति में किया है। 'ज्ञान' और 'कौशल' अर्थात 'मस्तिष्क' और 'मेहनत' के समन्वय से ही मानव–जाती अन्य जानवरों से बेहतर अवस्था में पहुंची। तमाम विपरित परिस्थितियों से संघर्ष कर सकी। जीवित रह सकी। हालांकि इसी प्रक्रिया में मानव–जाती दो वर्गों में बंटती भी चली गयी। एक तो वे लोग, जिनके पास निर्जीव जगत के उपयोग का 'कौशल' है। यानी जो 'मेहनत' पर निर्भर है। दूसरे वे लोग, जिनका अधिपत्य 'ज्ञान' और 'कौशल' दोनों पर हैं। जिससे वह अन्य 'मनुष्यों' को भी अपने अधीन कर लेता है। इसी तरह पहला वर्ग निरन्तर गरीब और दूसरा वर्ग 'अमीर' होता गया हैं।

'जन विज्ञान आंदोलन' में 'आंदोलन' का अर्थ ही है 'ज्ञान' को लगातार विकसित करना। बहुसंख्यक 'गरीब' वर्ग के कौशल का उसकी बेहतरी के लिए उपयोग करना। इस बढ़ते हुए ज्ञान को 'गरीब' वर्ग के बड़े से बड़े हिस्से तक पहुंचाना।

विज्ञान के लोकव्यापीकरण के काम से शुरूआत करने वाले 'केरल शास्त्र साहित्य परिषद्' (के.एस.एस.पी.) का ही रूपान्तरण 'जन विज्ञान आंदोलन' में हुआ। वह पूरे देश में फैला। बहुसंख्यक गरीब वर्ग यह देख और समझ रहा था कि कैसे एक छोटा–सा अमीर वर्ग, 'ज्ञान' और 'कौशल' पर कब्जा कर, अपना वर्चस्व स्थापित कर लेता है। इसी समझ के चलते बहुसंख्यक गरीब वर्ग में प्रतिरोध और संघर्ष की भावनाएं जागी। उसने इस इकतरफा प्रक्रिया को रोकने और मोड़ने का काम किया। जिसे हम 'सामाजिक क्रांति' कहते हैं। इसी प्रक्रिया ने 'सामाजिक क्रांति के लिए विज्ञान' नारे को जन्म दिया।

'आज की दुनिया' हमें स्वीकार नहीं है। 'दूसरी दुनिया' की जरूरत है, क्योंकि–

- प्रतियोगी पूंजीवाद, केवल और केवल उत्पादन बढ़ाकर संसाधनों और सत्ता को सीमित हाथों में सौप देता है। चुनिंदा व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित 'निर्णय–प्रक्रिया' व्यापक वर्ग के जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णय लेती है।

- इस कारण सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करने की होड़ बढ़ जाती है। जिससे संघर्ष बढ़ता है, विनाश बढ़ता है।

- उत्पादन में वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों को 'अप्राकृतिक' उत्पादों में तब्दील कर देने की प्रक्रिया से 'कचरा' बढ़ता है। जिसका कुछ हिस्सा तो जीवन के लिए नुकसानदेह तक साबित हुआ है। जमीन, हवा और पानी को प्रदूषित करने वाले 'कचरे' से पर्यावरण में व्यापक बदलाव हुआ है। 'वैश्विक गर्मी' बढ़ी है। सदियों से नियमित चली आ रही ऊर्जा गतियों और संतुलन को इसने बिगाड़ दिया है। इस कारण मौसम में भारी फेरबदल हो रहे हैं। मौसम–चक्र बदल रहे हैं। चक्रवात और तूफान उठ रहे हैं। ये ज्ञात तथ्य हैं।

- इस कारण 'सामूहिकता' के मूल्य को त्याग कर मानव–जाती अब 'स्वार्थियों' में बदलती जा रही है। जिसके लिए व्यक्तिगत हित ही सर्वोपरि होता है। जबकि मानव–जाती के उद्‌भव और विकास में 'सामूहिकता' का ही सबसे ज़्यादा महत्व रहा है।

- विनाश की इस प्रक्रिया को समझने में जितनी देर की जायेगी, उतना ही मानव–जाती ऐसी स्थिति की तरफ बढ़ती जायेगी, जहां से लौट पाना संभव न होगा। 'पूर्ण विनाश' तक भले ही यह ना पहुंचे, एक 'बर्बर' दौर तक तो जरुर पहुंच जायेगी।

चूंकी, मनुष्य ऐसी बर्बादियों का पूर्वानुमान लगा सकता है और खुद को नष्ट करना नहीं चाहता, इसलिए उसे एक वैकल्पिक दुनिया के लिए कोशिशें करनी ही होंगी। ऐसी दुनिया जहां उपरोक्त खतरे नहीं होंगे।

जिसमें 'सामाजिक–सांस्कृतिक' तरीकों से मानव–जाती फलेगी–फूलेगी। 'पशु' होने की सीमाओं को तोड़कर 'मुक्ति' हासिल करेगी।

केवल भविष्य के लिए ही नहीं, बल्कि 'वर्तमान' के लिए भी वैकल्पिक दुनिया की जरूरत है। एशिया, अफ्रिका और लातिनी अमेरिका की बहुसंख्यक आबादी का 'वर्तमान' नारकीय है। यूरोपीय, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और जापान सरीखे विकसित देशों तक में बहुतेरों का वर्तमान सुखद नहीं है।

विकसित देशों में खुद की जगह बनाये रखने के लिए व्यक्ति को तेज से तेज चलना होता है। लिहाजा काम के घंटों में लगातार वृद्धि होती जा रही है। काम भी वह नहीं, जो मन–मुआफिक हो। जिसका मार्क्स–एंगेल्स ने 'जर्मन आइडियालॉजी' में वर्णन किया है। बल्कि यह काम तो उन पर लादा गया है। काम, जो खुद को जिंदा रखने के लिए जो उन्हें विवशता से स्वीकारना पड़ता है। यह स्थिति मानव–जाति की आदिम स्थिति से बहुत अलग नहीं है। जब जीवित रहने के लिए भोजन एकत्रित करना ही मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण था। उन पर हमलों का खतरा हमेशा मंडराता रहता था। भूखे रह जाने का डर बना रहता था।

विकसित और विकासशील देशों के शहरों और महानगरों में अधिकतर लोग खुद को असुरक्षित महसूस करते हैं। मनुष्य अपनी और अपनी संतानों की सुरक्षा चाहता है। नवउदार दुनिया यह मुहैया नहीं कराती। इसीलिए पूंजीवाद के विकल्प की जरूरत है।

आम तौर पर 'समाजवाद' को 'पूंजीवाद' के विकल्प के रूप में देखा जाता है। इस बात पर भी कमोबेश सहमति है कि वैकल्पिक समाजवाद वही नहीं है, जो बीसवीं सदी में था। बल्कि मार्क्स और एंगेल्स के 'समाजवाद' से यह कुछ भिन्न होगा।

मार्क्स ने समाजवाद की कल्पना, 'पूंजीवादी विहिन पूंजीवाद' या 'राज्य के पूंजीवाद' के तौर पर नहीं की थी। उसने पूंजीवाद से स्पर्धा करने या उपभोग के मामले में उससे आगे बढ़ जाने के रूप में भी समाजवाद की कल्पना नहीं की थी। उसने महानगरीकरण और आबादी के सकेंद्रीकरण की वकालत भी नहीं की थी। उसने तो कृषि और उद्योगों के समान फैलाव की बात की थी। नगरीकरण की प्रक्रिया पलटने की बात की थी। कस्बों के विकास की बात की थी। प्रकृति की लय टूट न जाये, इस बाबत वह बेहद चिंतित था। वह तो 'दीर्घ स्थायित्व' और 'पीढ़ियों की समता' का पक्षधर था। बीसवीं सदी के समाजवाद में ऐसे अनेक तत्व नदारद थे।

'उत्तर पूंजीवाद' का स्वाभाविक अर्थ 'समाजवाद' नहीं हो सकता। इसका अर्थ 'बर्बरतावाद' भी हो सकता है। जैसा अंदेशा रोज़ा लक्समबर्ग ने कोई एक सौ बरस पहले व्यक्त किया था। इसका अर्थ 'मानव–जाति' का पूर्ण–विनाश भी हो सकता है। जिसका डर आज कइयों को परेशान कर रहा है। इसका अर्थ ऐसे 'समाजवाद' से होना चाहिये, जो कई मायनों में पिछली सदी के समाजवाद से अलग हो। इस बारे में व्यवस्थित योजना बनाने और काम करने की ज़रुरत है।

इस मामले में जिस सामाजिक क्रांति की कल्पना 'जन विज्ञान आंदोलन' करता है, पहले की बूर्ज्वा या सामंती क्रांतियों से सर्वथा भिन्न है। सामंतवाद या पूंजीवाद, अपने पूर्ववर्ती समाजों से सचेत भविष्यवादी संघर्षों के कारण नहीं उपजे थे। जबकि यह क्रांति, जिसे हम समाजवादी क्रांति कह सकते हैं, एक सचेत और योजनाबद्ध प्रयास का ही परिणाम हो सकती है। अनायास का परिणाम यदि पूर्ण विनाश न भी हुआ, तब भी 'बर्बरतावाद' तो जरूर होगा।

कहा जा सकता है कि हम आज इतिहास के उस स्थान पर खड़े हैं, जहां मानव जीवन खत्म होने या मुक्त होने की कगार पर है। जैसी की

अपेक्षा की जाती है, एक समाजवादी क्रांति का अर्थ शोषण के तरीकों में परिवर्तन न होकर तमाम तरह के शोषण का खात्मा होता है।

मुक्ति केवल वैश्विक पैमाने पर ही स्थिर हो सकती है। 'वैश्विकरण' का एक नया अवतार–मुक्ति का वैश्विकरण होगा। जरूरी नहीं कि इसमें सर्वहारा की 'वैश्विक तानाशाही' ही हो। अब तक के अनुभव बताते हैं कि किसी भी देश में कामगार वर्ग की पार्टी के हाथों में सत्ता के केंद्रित होने वाली 'सर्वहारा की तानाशाही' वाली व्यवस्था 'मुक्त' नहीं करा सकी। किसी एक पार्टी के हाथों में वैश्विक सत्ता वाली व्यवस्था भी कोई भिन्न परिणाम दे सकेगी, संदेहास्पद है। 'तानाशाही' कभी भी लोकतंत्र या सामाजिक नियंत्रण को प्रोत्साहित नहीं करती।

यदि हम उसे भविष्य की समाजवादी क्रांति कहने पर सहमत हो, तो वह कभी भी एक 'वैश्विक घटना' नहीं होगी। वह किसी 'स्थानीय घटना' का वैश्वीकरण होगी अर्थात 'स्थानीयता का वैश्वीकरण' जिसमें वैश्वीक संपर्कों, ज्ञान के आदान–प्रदान, सांस्कृतिक आदान–प्रदान और श्रम के अत्याल्प जरूरी विभाजन को बरकरार रखते हुए दूर के (वैश्वीक) नियंत्रणों से आजादी होगी। राजनीति और आर्थिक मामलों में स्थानीय स्वायत्तता होगी।

'स्थानीय' का अनिवार्य अर्थ 'राष्ट्र–राज्य' न होगा। लोगों को प्रभावी हिस्सेदारी और उनके अपने जीवन पर खुद के प्रभावी नियंत्रण की दृष्टि से अधिकतर राष्ट्र–राज्य बेहद बड़े हैं। ये स्थिति हमें (1) वैकल्पिक या दूसरी दुनिया के भविष्य के समाज के ढांचे और (2) उसे सच करने के लिए जरूरी रणनीति और कार्यनीति के सूत्र मिलते हैं।

विकल्प के मुख्य लक्षण निम्नानुसार रखे जा सकते हैं। (हर किसी का इससे सहमत होना संभव नहीं। बहुत से महसूस कर सकते हैं कि स्पर्धा या लगातार बढ़ते उपभोग के बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन बहुमत इनसे सहमत हो सकता है।)

◆ ज़मीन तथा उत्पादन के अन्य साधनों पर से निजी स्वामित्व समाप्त कर उसे सामाजिक स्वामित्व के तहत लाना। इससे कोई शोषण नहीं होगा।

◆ आजीविका के अवसरों को बढ़ाना।

◆ समानता को बढ़ाना।

◆ गांव और शहर, उद्योग और खेती के बीच के फासले को कम करना। कस्बाईकरण को बढ़ाना।

◆ तमाम तरह के अपवर्तनों से छुटकारा।

◆ आगामी पीढ़ी को सौंपने के लिए राष्ट्र के स्वास्थ्य में लगातार सुध ार करना।

◆ ये लक्ष्य केवल राष्ट्र–राज्य के स्तर पर आंशिक रूप से ही हासिल किये जा सकते हैं। अंततः वे वैश्विक पैमाने पर ही स्थिरता हासिल करेंगे। इसमें संक्रमण का दौर रहेगा, जो बहुत लंबा, टेढ़ा–मेढ़ा और उतार–चढ़ाव भरा हो सकता है। इसके लिए कुछ निश्चित मानक

होने चाहिये, जो बताते रहे कि हम सही दिशा में हैं। जीवन के भौतिक और आत्ध्यात्मिक स्तर में निरंतर सुधार, ऐसे मानक हो सकते है।

अर्थात्

– लोगों में, खासतौर पर गरीब तबके में, जीवन प्रत्याशा बढ़ना। बीमारियों और शिशु मृत्यु दर में कमी आना।

– आय की असमानता में निरंतर कमी आना।

– समाज संचालन में जनता की लोकतांत्रिक भागीदारी बढ़ना।

– महिलाओं की स्थिति में सुधार आना।

– बच्चों और हाशिये पर सिमटे लोगों के लिए सुरक्षा।

– इन सबको हासिल करने के लिए ऊर्जा की कम खपत।

– ग्रीन हाऊस' गैसों के उत्सर्जन में कमी आना और अंततः वातावरण में उनकी सांध्रता घटना।

– माल–असबाब के व्यर्थ लाने–ले जाने और मनुष्यों की अनावश्यक यात्राओं में लगातार कमी आना।

– स्थानीय स्तर पर आत्म निर्भरता बढ़ना। शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा आदि की तुलना में हथियारों की खरीदी, पुलिस, न्याय व्यवस्था, जेल आदि के खर्चों में लगातार कमी आना।

– अत्यंत कम या ना के बराबर कल्याणकारी मूल्यों या सजावटी और विनाशक मूल्यों वाली वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में लगातार कमी आना।

– इसके लिए एक नई 'अर्थ–व्यवस्था' की भी जरूरत है। जो कल्याणकारी मूल्य, सजावटी और विनाशक मूल्यों में भेद कर सके। इसके लिए उसे 'जरूरत' और 'लालच', जीवन–स्तर, विकास, समानता, सुरक्षा, स्थायीत्व, बर्बादी, अमानवीयकरण, सहभागिता, आत्मनिर्भरता आदि के मानकों का प्रयोग करना होगा।

नयी वैकल्पिक दुनिया का सामान्य ढांचा वर्तमान दुनिया से भिन्न होगा। राष्ट्र–राज्य अपनी महत्ता खो देंगे। मानव–समाज सहयोगी उत्पादकों का एक वैश्वीक नेटवर्क बन जायेगा। जिसमें हर संघ केंद्र में होगा और उसके इर्द–गिर्द विभिन्न संघीय चक्र होंगे। इसमें किसी का वर्चस्व नहीं होगा, सब समान धरातल पर होंगे।

इस समान–धरातल को हासिल करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी में शोध और विकास कामों को कुछ इस तरह नियोजित करना होगा कि–

◆ सौर ऊर्जा का सस्ता और बहुतायत में प्रयोग हो।

◆ 'कचरे' की अवधारणा खत्म करने के लिए प्रत्येक वस्तु को संसाधन में बदलना होगा।

◆ वातावरण से 'ग्रीन हाउस' गैसों को कम करना होगा।

◆ कम मात्रा के उत्पादन को सक्षम और सस्ता बनाना होगा।

उपरोक्त तरीकों पर आधारित स्थानीय अर्थ व्यवस्थाएं बनानी होंगी। अधिकतम उपयोगी सामान और सेवाओं के स्थानीय उत्पादन, स्थानीय विपणन, स्थानीय सम्मान, स्थानीय वैकल्पिक मुद्रा, स्थानीय और अंतर्सम्बन्धित सुरक्षा उपाय आदि तमाम को प्रोत्साहित करना होगा। जहां–जहां संभव हो, ऐसी अर्थव्यवस्थाओं के प्रयोग करने होंगे। इससे वह आधार तैयार होगा जिस पर भविष्य के समाज का निर्माण किया जा सकेगा। इससे एक रक्षात्मक दीवार भी बनेगी, जो वैश्विक नव–उदारवाद के आक्रमण से रक्षा कर सकेगी।

दुनिया भर में वाम और प्रगतिशील ताकतें, नवउदारवादी वैश्वीकरण से संघर्ष कर रही हैं। जिनमें साम्यवादियों सहित व्यापक वामपक्ष के कई धड़े यह मानते हैं कि विश्व–बाजार में प्रवेश करने और वहीं पर इस ताकत से लड़ने–भिड़ने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। कुछ ने तो इस सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया है कि पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था से गुजरे बगैर समाजवाद की कल्पना ही संभव नहीं है। क्योंकि अकेला वहीं दौर है, जो उत्पादक शक्तियों का विकास कर सकता है। इसीलिए बीसवीं सदी के समाजवाद के प्रयोग सफल नहीं रहे कि उन्होंने पूंजीवाद की उस सर्वोच्च अवस्था को विकसित ही नहीं होने दिया।

यह एक खतरनाक तर्क है। यह रास्ता समाजवाद की तरफ नहीं बल्कि मानव–जाति के अंत अथवा बर्बरतावाद की तरफ जायेगा। समाजवादी समाज के छोटे–छोटे टापू बनाये जा सकते हैं। आज वाम और प्रगतिशील ताकतों और जन विज्ञान आंदोलन का भी यहीं मुख्य मकसद होना चाहिये। एक स्थानीय अर्थव्यवस्था, वैश्वीकरण के विरूद्ध प्रति–आक्रमण भी होगा। इसके लिए युद्ध–भूमि वहीं होना चाहिये जहां दुश्मन मौजूद हैं। अर्थात–बाजार। वहीं उसका किला है। हमें स्थानीय बाजार, गांव के बाज़ार, शहर के बाज़ार में दुश्मन पर हमला बोलना चाहिये। अपने बाज़ारों से नवउदारवाद को बाहर धकेलने के लिए हम कीमत, स्तर, शिक्षा, स्थानीयता, साहस आदि का उपयोग कर सकते हैं। बेशक, बहिष्कार भी एक शक्तिशाली हथियार है। वाम और

प्रगतिशील ताकतों को 'बहिष्कार' के साथ ही स्थानीय आंदोलनों की महान ताकत में भरोसा जताना होगा।

भारत में 'जन विज्ञान आंदोलन' लगभग तीन दशक पुराना ही है। इस नाम का प्रयोग सबसे पहले 1978 में त्रिवेंद्रम में हुए 'समान विचारों वाले समूहों' के एक सम्मेलन में किया गया था। दुनिया के अनेक हिस्सों में इस तरह के विचार पैदा हुए हैं। संगठन भी बने हैं। यद्यपि भारत में 'जन विज्ञान आंदोलन' का सामाजिक दृष्टिकोण अधिक समग्र रहा है। जिसमें मानव जीवन के अधिकतर हिस्सों के बारे में सोचा–विचारा गया है। इस तरह इसे सबसे प्रगत 'जन विज्ञान आंदोलन' कहा जा सकता है। तब भी यह प्रगति नितांत छोटी है। आगे की लंबी यात्रा के मात्र कुछ कदमों जैसी।

जब हम लंबी यात्रा' कहते हैं, तो हमारे जेहन में दूरी और गंतव्य के बारे में कुछ विचार होते हैं। हमें एक ऐसा मार्ग तलाशना है, जो वर्तमान व्यवस्था में अधिक से अधिक होते जा रहे ज्ञान, कौशल और आजीविका के विभाजन को कम से कम कर सके।

राजनीतिक आंदोलन 'राज्य–शक्ति' के उपयोग से आय के अंतर को पाटने का लक्ष्य रखते हैं। इसी लक्ष्य के लिए 'जन विज्ञान आंदोलन' ज्ञान और कौशल के विस्तार की नीति अपनाते हैं। इसीलिए इसकी व्यापक नीतियों में सबसे बड़ा हिस्सा 'शिक्षा' का होता है। 'नागरिक–शिक्षा' के अधिकार क्षेत्र में सब आते हैं– जवान–बूढ़े, स्त्री–पुरूष, शिक्षित–अशिक्षित सभी। केरल में और दूसरी जगहों पर भी 'जन विज्ञान आंदोलन'' की शुरूआत बच्चों से बड़ों तक 'विज्ञान के प्रसार' द्वारा ही हुई है। एक ऐसे देश में जहां 30–40 फीसद लोग असाक्षर हैं और बाकी में भी 20–30 फीसद लोग प्राथमिक–शिक्षा से आगे नहीं पढ़ पाये हो, वहा 'शिक्षा' का अर्थ बहुत व्यापक होता है। ये पूरी आबादी के लिए प्राथमिक साक्षरता से शुरू होती है। पर केवल इसके जरिये गरीब लोग गरीबी से नहीं लड़ सकते। हाईस्कूल के प्रमाणपत्र या डिग्रियां भी नाकाफी ही हैं। पूरी की पूरी गरीब आबादी को सबसे अमीर दस

फीसद लोगों के बराबर 'ज्ञान' और 'कौशल' मिलने चाहिये। विज्ञान, गणित, अंग्रेजी और समाज–विज्ञान की शाखाओं का 'ज्ञान' और कम्प्यूटर, मानव–संबंधों के प्रबंधन आदि का 'कौशल'। अन्यथा बहुसंख्यक की कीमत पर एक बेहद छोटे तबके के अमीर होते जाने की प्रक्रिया चलती रहेगी। शिक्षा की असमानता, आर्थिक असमानता बढ़ाती है और इसका उल्टा भी सच है। 'जन विज्ञान आंदोलन' ज्ञान के अंतर को पाटने की कोशिश करता है, जिससे आर्थिक अंतर को पाटा जा सके। जबकि गरीबों की हमदर्द प्रगतिशील राजनीतिक ताकतें आर्थिक असमानता को दूर करके 'ज्ञान' के अंतर को पाटने की कोशिश करती है। इस तरह ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

'जन विज्ञान आंदोलन' अनेक गतिविधियों में संलग्न है। पर्यावरण, स्वास्थ्य, ऊर्जा, शोध, प्रौद्योगिकी, आर्थिक–नियोजन, लैंगिक–समानता, आदि–आदि। हालांकि इन तमाम गतिविधियों में ''जन विज्ञान आंदोलन' की भूमिका 'शिक्षा' की है। जिसमें 'गतिविधि' एक शैक्षणिक उपकरण है। आंदोलन लगातार सिखने की प्रक्रिया में है। किसी भी संभावित स्रोत से 'ज्ञान' अथवा 'कौशल' अर्जित करने में आंदोलन तत्पर रहता है, और उन्हें वंचित समूहों के साथ बांटता है। इस तरह 'ज्ञान' सूचनात्मक हो सकता है, कल्पनात्मक और उत्तेजनात्मक हो सकता है।

'जन विज्ञान आंदोलन' बौद्धिक–संपदा के विराट को स्वीकार नहीं करता। संपदा निजी होती है। यदि हम उसकी तरफ दुर्लक्ष्य करे, वह खत्म होने लगती है। पर बांटने से 'ज्ञान' कम नहीं होता, दरअसल वह बढ़ता ही है। इस धरती के विभिन्न हिस्सों में मानव–जाति हजारों सालों से 'ज्ञान' को अर्जित और संचित करती रही है। जिसमें से अधिकांशतः 'बौद्धिक संपदा' की पहुंच के बाहर ही है। सबके लिए उपलब्ध है। यदि इसे एकत्रित कर दुनिया के स्तर पर बांटा जाये तो यह दुनिया भर के लिए जरूरी सामान और सेवाएं पैदा कर सकता है। वर्तमान के साथ भविष्य के लिए भी। इससे जीवन का उम्दा भौतिक स्तर

हासिल किया जा सकता है। इतना टिकाऊ कि आने वाली अनेक पीढ़ियां उनका सुख भोग सके।

'जन विज्ञान आंदोलन' का मानना है कि आज की दुनिया के ज़्यादातर उत्पाद मानव–जाति के लिए कल्याणकारी नहीं हैं। उनमें सिर्फ 'दिखावटी' मूल्य निहित है। कई बार तो विनाशकारी भी। हमारा आंदोलन यह भी मानता है कि 'आवश्यकता' और 'लालच' में बहुत अंतर है। इस दुनिया में इतने संसाध ान उपलब्ध हैं कि तमाम लोगों की 'आवश्यकताओं' को तो पूरा किया जा सकता है, मगर उनके 'लालच' को नहीं।

'जन विज्ञान आंदोलन' का स्पष्ट मत है कि मानव–जाति के लालच को तुष्ट करने के लिए निर्मित सामान और सेवाओं के लगातार बढ़ने से अनिवार्य श्रम की अवधि भी बढ़ जाती है। अपवर्तन गहरा जाता है।' पशुता के चरण को पार कर मानव–जाति सचमुच के मानवीय इतिहास को रचने के लिए तैयार, मुक्ति की कगार पर है?' कार्लमार्क्स के इस कथन पर भी इस आंदोलन को गहरा भरोसा है। हमारा यह भी मानना है कि 'आवश्यकता' को 'लालच' से अलग करने का विवेक हासिल किये बिना इस संक्रमण को पूरा कर पाना संभव नहीं है।

इसी समझदारी के साथ 'जन विज्ञान आंदोलन' दुनिया के हर कोने में, दुनिया के हर समाज तक पहुंचना चाहता है। उनके पास मौजूद 'ज्ञान' और 'कौशल' को जोड़ कर उन्हें व्यापक तौर पर सांझा करना चाहता है। कमतर शैक्षणिक स्तर, अंग्रेजी भाषा तथा कम्प्यूटर की समुचित

जानकारी न होने से 'जन विज्ञान आंदोलन' के कार्यकर्ता अपने उपरोक्त कर्तव्य को पूरा कर पाने में समर्थ नहीं हो सकते। 'जन विज्ञान आंदोलन' के प्रत्येक साथी को लगातार अपना 'ज्ञान' बढ़ाते रहना चाहिये। अंग्रेजी भाषा और कम्प्यूटर पर अपनी पकड़ बढ़ा कर दुनिया भर के 'ज्ञान' तक पहुंचना चाहिये। दुनिया भर में चल रहे अपने जैसे आंदोलनों से संपर्क बढ़ाना चाहिये।

जीवन यात्रा

BHARAT
GYAN
VIGYAN
SAMITI
7th GENERAL COUNCIL
21-22 JULY 2008
TIRUPATI

BHARAT
SAMITI
7th GENERAL COUNCIL
21-22 JULY 2008
TIRUPATI

NATIONAL CADRE CAMP
19th - 21st July, 2014